शून्य की नाव
(साधना शिविर, नारगोल में हुए 7 प्रवचन)

प्रवचन-क्रम

1. अकेलेपन का बोध...2
2. अज्ञान का बोध...15
3. रहस्य का बोध..29
4. जीवन का सहज-स्वीकार..43
5. जीवन जीओ अतिरेक में..55
6. प्रेम संबंध नहीं--चित्त-दशा है...68
7. परम जीवन को पाने की सीढ़ी..83

शून्य की नाव
पहला प्रवचन

अकेलेपन का बोध
(2 मई 1968 रात्रि)

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से इस शिविर की पहली चर्चा मैं शुरू करना चाहता हूं। बहुत पुराने दिनों की बात है। एक सम्राट अपने जीवन के अंतिम दिनों की गिनती कर रहा था और बहुत चिंतित भी था। मृत्यु से नहीं, वरन अपने तीन लड़कों से, जिनके हाथ में उसे राज्य को सौंपना था। वह यह निर्णय करने में असमर्थ था कि किसके हाथ में राज्य की शक्ति दे दे, क्योंकि शक्ति केवल उन हाथों में ही शुभ होती है, जो शांत हों। और यह निर्णय बहुत कठिन था कि उन तीनों में शांत कौन है? कैसे परीक्षा हो? कैसे जाना जा सके कि कौन व्यक्ति उस राज्य के हित में होगा, कौन अहित में?
कुछ चीजें होती हैं, जो बाहर से नापी जा सकती हैं; लेकिन जीवन में जो
भी महत्वपूर्ण है, उसे नापने के लिए न कोई बाट है, न कोई तराजू है।
कुछ चीजें हैं, जो बाहर से पहचानी जा सकती हैं, लेकिन जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसे बाहर से पहचानने का भी कोई उपाय नहीं है।
कैसे पहचाना जा सके, कैसे जाना जा सके, क्या रास्ता हो?
उस सम्राट ने एक फकीर से पूछा। उस फकीर ने कोई रास्ता बताया। और दूसरे दिन सुबह उसने तीनों अपने बेटों को बुलाया और उन्हें सौ-सौ रुपये दिए और कहा कि तीन जो महल हैं, उन तीनों के नाम--ये सौ-सौ रुपये मैं देता हूं। सौ रुपये में ऐसी चीजें खरीदना कि पूरा महल भर जाए, कुछ जगह खाली न बचे। जो तीनों में सर्वाधिक सफल हो जाएगा, वही सम्राट बनेगा, वही राज्य का अधिकारी हो जाएगा।
कुल सौ रुपये! और महल उन राजकुमारों के बहुत बड़े थे।
पहले राजकुमार ने सोचा, सौ रुपये से क्या महल भरा जा सकेगा? वह गया जुआ
घर में और सौ रुपये उसने दांव पर लगाए। हो सकता है जुए में जीत सके तो फिर बहुत रुपयों से उस बड़े महल को भर ले; क्योंकि महल बहुत बड़ा था। सौ रुपये में भरा नहीं जा सकता था।
लेकिन जैसा कि अक्सर होता है, जो बहुत खोजने जुए में जाते हैं, वह भी खोकर लौट आते हैं, जो उनके पास था। वैसे ही वह युवा भी सौ रुपये खोकर घर वापस लौट आया। उसका महल बिल्कुल खाली रह गया।
दूसरे राजकुमार ने सोचा कि सौ रुपये बहुत थोड़े हैं। इतना बड़ा महल हीरे-जवाहरातों से तो भरा नहीं जा सकता। एक ही रास्ता है कि गांव का जो कूड़ा-कचरा बाहर फेंका जा सकता है, उसे खरीद लिया जाए और महल भर दिया जाए। गांव से जो भी कूड़ा-कचरा बाहर जाता, सब उसने खरीदना शुरू कर दिया और महल में कूड़े-कर्कट के ढेर लगा दिए। सारा महल भर गया, लेकिन साथ ही दुर्गंध भी भर गई। उस रास्ते से निकलना भी मुश्किल हो गया।
तीसरे राजकुमार ने भी महल भरा। किससे भरा? कैसे भरा? वह थोड़ी देर में स्पष्ट हो सकेगा।
तिथि आ गई निर्णय की। परीक्षा के लिए सम्राट आया। पहले राजकुमार का महल खाली था। उस राजकुमार ने कहाः क्षमा करें, सौ रुपये बहुत कम थे। सोचा मैंने जुआ खेलूं, शायद और जीत जाऊं तो फिर महल को भरूं। मैं हार गया, महल खाली है।
दूसरे राजकुमार के महल के पास जाकर तो घबड़ाहट हो गई। इतनी बदबू थी, सारा महल कूड़े-कर्कट से, गंदगी से भरा था! उस राजकुमार ने कहाः कोई और रास्ता न था। सिर्फ कचरा ही खरीदा जा सकता था। सौ रुपये में और क्या मिल सकता है?
फिर सम्राट तीसरे राजकुमार के महल के पास गया। देख कर दंग रह गए परीक्षार्थी। जो निर्णायक थे, वे देख कर आश्चर्य से भर गए--इतनी सुगंध थी

2

उस महल के पास! फिर वे भीतर गए, रात थी अमावस की। सारे महल में दीये जलाए गए थे! राजा ने पूछाः तूने महल किस चीज से भरा है?
उस राजकुमार ने कहाः प्रकाश से, आलोक से।
कोने-कोने में दीये जले थे! सारा महल प्रकाश से भरा था, और सुगंधियां छिड़की गईं थीं और महल के द्वार-द्वार, खिड़की-खिड़की पर फूल लटकाए गए। वह महल सुगंध से और प्रकाश से भरा था।
तीसरा राजकुमार सम्राट हो गया। वह उस राज्य का अधिकारी हो गया।
हममें से, बहुत ही मुश्किल है, कोई जीवन का सम्राट हो सके। क्योंकि या
तो हमने जीवन को दांव पर लगा रखा है। और हर दांव इस आशा में कि कुछ मिलेगा तो फिर हम जी लेंगे। और जैसा कि दांव पर होता है, हम हारते ही चले जाते हैं और जीवन का महल अंततः सूना ही रह जाता है। और या फिर हममें से कुछ ने कूड़े- कर्कट से महल को भरने की ठान ली है। जीवन में जो भी व्यर्थ है, उसी को खरीद कर हम महल में लिए चले आ रहे हैं। जिसका कोई मूल्य नहीं अंतिम, जिसका कोई अंतिम अर्थ नहीं; उस सब कूड़े-कर्कट को हम घर में इकट्ठा कर रहे हैं! क्योंकि तर्कना हमारी यही है कि इतना छोटा सा जीवन, इतनी छोटी शक्ति, इससे महल कोई हीरे-जवाहरातों से तो भरा नहीं जा सकता। इतनी थोड़ी शक्ति से महल कूड़े से ही भरा जा सकता है, सो हम कूड़े से भर रहे हैं।
लेकिन हमें पता नहीं कि जिस महल को भरने में हम लगे हैं, उसी महल की दुर्गंध हमें ही उस महल के भीतर रहने नहीं देगी। हमारा जीना ही मुश्किल हो जाएगा और हमारा जीना मुश्किल हो गया है। इतने अशांत हैं, इतने दुखी हैं, इतने चिंतित! क्यों? यह चिंता और अशांति आकाश से नहीं आती, न चांद-तारों से आती है। यह चिंता और पीड़ा कहीं से भी नहीं आती सिवाय उस महल के, जो हमने ही दुर्गंध, कूड़े-कर्कट से भर रखा है। सारी अशांति, सारी चिंता, सारी पीड़ा वहीं से पैदा होती है। यह हमारे ही श्रम का फल है, यह हमारी ही चेष्टा है, यह हमारा ही प्रयास है, हमारा ही प्रयत्न है।
लेकिन ये दो तरह के राजकुमार तो हमारे भीतर हैं। वह तीसरा राजकुमार हमारे भीतर नहीं है, जो प्रकाश से और सुगंध से अपने महल को भर सके।
यहां इस निर्जन में इस सागर तट पर इसीलिए आपको बुला भेजा है कि इन तीन दिनों में कुछ बात आपसे करूं कि महल का दीया जल सके, महल में फूल आ सकें, सुगंध आ सके। और शायद परमात्मा के राज्य के आप भी अधिकारी हो सकें। कौन पता है, किसे पता है, कि आपको भी इसलिए नहीं भेजा गया हो? किसको पता है कि जीवन में एक परीक्षा न हो? किसको पता है कि जीवन की इस एक परीक्षा में कैसे और कौन उत्तीर्ण होगा?
लेकिन एक बात सुनिश्चित है, जीवन के अंत तक जो प्रकाश जला लेता है, अपने जीवन के महल में जो सुगंध भर लेता है, स्वयं को जो संगीत बन जाता है; अगर कहीं भी कोई परमात्मा है, अगर कहीं भी कोई आनंद है, अगर कहीं भी कोई संपदा है तो निश्चित ही वह उसका अधिकारी हो जाता है।
इस कहानी से इसलिए शुरू करना चाहता हूं; ताकि आपका जीवन गृह खाली न रह जाए, कूड़े-कर्कट से न भर जाए। प्रकाश से भर सके, संगीत से भर सके, सुगंध से भर सके। यह कैसे हो सकता है? आज की रात तो कुछ थोड़े से प्राथमिक सूत्रों पर आपसे मैं बात करूंगा, जिनके आधार पर तीन दिन हम जीने की कोशिश करेंगे।
यह महल कैसे प्रकाश से भरेगा? वह तो आने वाले तीन दिनों में उसकी दिशा में कुछ सूत्र, कुछ वैज्ञानिक चरण, कुछ सीढ़ियां आपको कहूंगा, लेकिन उसके पहले आज तो कुछ प्राथमिक सूत्र ही समझ लेने जरूरी हैं कि ये तीन दिनों के शिविर में हम कैसे जीएंगे, कैसे रहेंगे?
और इतना स्पष्ट समझ लें कि एक आदमी तीन क्षणों के लिए भी ठीक से जीना सीख जाए तो सारा जीवन ठीक हो सकता है, क्योंकि जो व्यक्ति एक क्षण को भी जीने की ठीक दिशा में कदम उठा ले, जो एक क्षण को भी जीवन के आनंद से संबंधित हो जाए, फिर इस जीवन में दुबारा उस आनंद से अलग हो जाना असंभव है। एक बार भी जो आंख खोल ले और देख ले, फिर इस जीवन में आंख का बंद हो जाना, और अंधेरे में भटक जाना संभव नहीं है।
तीन दिन बहुत हैं और तीन दिन आप निकाल कर यहां आ गए हैं, वह भी स्वागत
के योग्य है और धन्यवाद के योग्य भी। क्योंकि आज की दुनिया में कोई तीन दिन भी जीवन को प्रकाश से भरने के लिए निकालने को राजी नहीं!

एक आदमी, एक बहुत बड़ा सौदागर, जो नौका लेकर दूर-दूर के देशों में करोड़ों रुपये कमाने गया था। उसके मित्रों ने उससे कहा कि तुम नौका में घूमते हो। पुराने जमाने की नौका! तूफान होते हैं, खतरे होते हैं, नावें डूब जाती हैं। तुम कम से कम तैरना तो सीख लो।
उस सौदागर ने कहाः तैरना सीखने के लिए मेरे पास समय कहां?
लोगों ने कहाः ज्यादा समय की जरूरत नहीं। गांव में एक कुशल तैराक है।
वह कहता है, तीन दिन में ही हम तैरना सिखा देंगे।
लेकिन उसने कहाः वह ठीक कहता है; लेकिन तीन दिन मेरे पास कहां? तीन दिन में तो हजारों का कारोबार कर लेता हूं। तीन दिन में तो लाखों यहां से वहां हो जाते हैं। कभी फुरसत मिलेगी तो जरूर सीख लूंगा।
फिर भी लोगों ने कहा कि बड़ा खतरनाक है, तुम्हारा नाव पर निरंतर जीवन है, किसी भी दिन खतरा हो और तुम तैरना न जानो!
तो उसने कहाः और कोई सस्ती तरकीब हो तो बता दें, इतना समय तो मेरे पास नहीं।
तो लोगों ने कहाः एक कम से कम दो पीपे अपने पास रख लो। कभी जरूरत पड़ जाए तो उन्हें पकड़ कर तुम तैर तो सकोगे।
उसने दो पीपे खाली मुंह बंद करवा कर अपने पास रख लिए। उनको हमेशा अपनी नाव में, जहां सोता, वहीं रखता। और किसी को पता भी न था कि एक दिन वह घड़ी आ गई। तूफान उठा और नाव डूबने लगी। तो वह चिल्लाया, कि मेरे पीपे कहां हैं? तो उसके नाविकों ने समझा कि ठीक है, वह अपने पीपे खोज कर आ जाएगा। वह उसके बिस्तर के नीचे ही रखे रहते हैं। तो बाकी नाविक तो कूद गए, वे तैरना जानते थे। वह अपने पीपों के पास गया। लेकिन दो खाली पीपे भी वहां थे, जो उसने रख छोड़े थे तैरने के लिए और दो स्वर्ण-अशर्फियों से भरे पीपे भी थे, जिन्हें वह लेकर आ रहा था। उसका मन डांवाडोल होने लगा कि कौन से पीपे लेकर कूदे-सोने से भरे हुए या खाली? फिर आखिर उसने देखा कि नाव तो डूबने लगी है। खाली पीपे लेकर कूदने से क्या होगा? उसने अपने सोने से भरे पीपे लिए और कूद गया!
जो उसका हुआ होगा, वह आप समझ ही सकते हैं। वह तीन दिन तैरने के लिए नहीं निकाल सका था! आप तीन दिन तैरने के लिए निकाल सके हैं, इससे स्वागत आपका करता हूं। और उसे मौका भी मिल गया था कि वह खाली पीपे लेकर कूद जाता, लेकिन वह भरे पीपे लिए कूद गया! क्योंकि जिनकी जीवन भर भरे होने की आदत होती है, वे एक क्षण में खाली होने को राजी नहीं हो सकते।
इधर तीन दिनों में खाली पीपे कैसे उपलब्ध किए जा सकें, वही मुझे आपसे कहना है। और नदी में तैरना हो तो खाली पीपा सहयोगी होता है। और अगर परमात्मा के सागर में और जीवन के सागर में तैरना हो तो स्वयं का खाली पीपा बन जाना जरूरी होता है। वहां जो व्यक्ति जितना खाली और शून्य हो जाता है, वह उतना ही प्रभु के सागर में तैरने में समर्थ हो जाता है।
लेकिन हम सब अपने को भरने की कोशिश में लगे रहते हैं! कोई सोने से भर लेता है, कोई मिट्टी से। कोई कंकड़ों से भर लेता है, कोई हीरे-जवाहरातों से। लेकिन पीपा सोने से भरा है कि मिट्टी से, कि कंकड़ों से, कि हीरे-जवाहरातों से, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भरा पीपा डुबाता है, चाहे किसी चीज से भरा हो।
उस दिन सोने से भरे पीपों ने उसे बचाया नहीं। कितना उसने मन में नहीं कहा होगा डूबते क्षणों में कि अरे पीपे, मैंने तुझे सोने से भरा है, और तू मुझे बचाता नहीं। मैंने कोई मिट्टी तो भरी नहीं है, जो मैं डूब जाऊं; मैंने सोने से भरा है तुझे, फिर भी तू डुबाता है! लेकिन पीपे ने शायद ही सुना हो, क्योंकि भरे पीपे सिर्फ डूबना जानते हैं, तैरना नहीं जानते। फिर वे किससे भरे हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
हम क्या भर लिए हैं अपने भीतर, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हमने सिर्फ डूबने की तैयारी की है, तैरने की हमारी कोई तैयारी नहीं।
धर्म तैरने की कला है।
और हम सब जो कुछ सीखे हैं, वह सब डूबने की तैयारी है। कैसे हम अपने को खाली करेंगे, कैसे हम तैरने में समर्थ हो जाएंगे, कैसे हम जीवन की नाव को

अज्ञात के सागर में उस तट तक पहुंचा सकते हैं-जिस तट का नाम परमात्मा है, जिस तट का नाम प्रभु है, जिसका नाम सत्य है? कैसे?
प्राथमिक सूत्र स्मरण कर लेने जरूरी हैं।
पहली बात, मुझसे लोग पूछते हैं कि साधना-शिविर यानी क्या? कल ही कोई मुझसे रास्ते में पूछ रहा था कि साधना-शिविर क्या है और सत्संग क्या है? तो मैंने उन्हें कहा, सत्संग उनके लिए है, जो श्रावक हैं, जो सुनने को उत्सुक हैं। और साधना शिविर उनके लिए है, जो साधक हैं, जो सिर्फ सुनने को नहीं, कुछ करने को आतुर हैं। जो लोग सिर्फ सुनने आ गए हों, वह गलत जगह आ गए हैं। सुनने के लिए तो मैं खुद ही आपके नगरों में आ जाता हूं कि आप सुन सकें, लेकिन कुछ करना हो, इसलिए यहां इस दूरी पर आपको बुला भेजा है, इस अकेलेपन में, ताकि कुछ किया जा सके।
इन तीन दिनों में सुनने की बहुत चिंता मत करना। इन तीन दिनों में कुछ करने का ख्याल स्पष्ट होना चाहिए। हम चाहे कितनी ही अच्छी बातें सुन लें, चाहे कितनी ही अच्छी बातें जान लें, उनके जानने और सुन लेने से जीवन में कोई क्रांति और कोई परिवर्तन नहीं हो जाता है, बल्कि इस लिहाज से व्यर्थ की बातें जानना उपयोगी भी है, क्योंकि व्यर्थ की बात जानकर कोई भी यह नहीं सोचता कि मुझे कुछ मिल गया है, लेकिन सार्थक बातें जान कर एक भ्रम पैदा होता है कि शायद हमें कुछ उपलब्ध हो गया, हमें कुछ मिल गया। अकेले सुनने से कुछ भी मिलने को नहीं है, यह साधक को सबसे प्रथम जान लेना चाहिए। उसे कुछ करना पड़ेगा, उसे कुछ होना पड़ेगा, उसे अपनी जीवन-विधि में कोई परिवर्तन, अपने जीने के ढंग में कोई भेद, अपने होने की व्यवस्था में कोई क्रांति उसे करनी पड़ेगी तो कुछ हो सकता है, अन्यथा कुछ भी नहीं हो सकता।
मात्र सुनने वाले होने से कुछ भी अर्थ नहीं है। सुनना भी एक मनोरंजन है। कोई संगीत सुन कर आनंद अनुभव करता हैं, कोई जीवन के सत्य की बातें सुनकर आनंद अनुभव करता है, लेकिन वह मनोरंजन से ज्यादा नहीं, थोड़ी देर के लिए भुलावा है। हमें कुछ करना पड़े तो हमारा जीवन बदल सकता है।
मैं जो कहूंगा इन तीन दिनों में, वह इसी दृष्टि से कि वह आपके भीतर कोई क्रियात्मक रूपांतरण बने, कोई एक्टिव ट्रांसफार्मेशन बने, आपके भीतर कुछ बदल ले आए। लेकिन वह बदल मैं नहीं ला सकता हूं, वह बदल आपका सहयोग मिले तो निश्चित आ सकती है।
पहली बात, साधना-शिविर एक क्रियात्मक जीवन-क्रांति के लिए सक्रिय रूप से, रचनात्मक रूप से, सृजनात्मक रूप से स्वयं को बदलने के लिए एक अवसर है। मात्र सुनने के लिए, समझने के लिए; कुछ तर्क, कुछ विचार, कुछ चिंतन के लिए नहीं; बल्कि कुछ स्वयं के जीवन की स्थिति को नया रूप, नया जीवन, नई दिशा देने के लिए।
इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से ध्यान में ले लेंगे, तो मैं जो कहूंगा,
उस पर आपस में कोई विचार नहीं करना है। मैं जो कहूंगा, उस पर बहुत चिंतन नहीं करना है, उस पर बहुत मनन नहीं करना है। मैं जो कहूंगा, उस पर आपस में विवेचन, विवाद और चर्चा बहुत नहीं करनी है।
मैं जो कहूं, उस पर थोड़े प्रयोग करने हैं। तीन दिन बहुत छोटा समय है। उसे चर्चा में, विचार में खो देना उपयोगी नहीं। उस पर कुछ थोड़े से प्रयोग कर लेने जरूरी हैं। क्योंकि मैं जो कहूंगा, वह प्रयोग करने से ही स्पष्ट होगा और समझ में आएगा कि उसका क्या अर्थ है।
मैं जो कहूंगा, उसे अगर थोड़ा भी, उस दिशा में एक कदम भी उठाएंगे तो वह पूरा का पूरा स्मरण में स्पष्ट हो जाएगा कि क्या कहा है और उसका क्या अर्थ है। उस पर कितना ही सोचें, विचार करें, आपस में विवाद करें, कुछ भी स्पष्ट नहीं होगा, बल्कि थोड़ा स्पष्ट भी हुआ होगा वह भी अस्पष्ट हो जाएगा, वह भी उलझ जाएगा।
जीवन में कुछ चीजें हैं, जो केवल जान कर ही नहीं, करके ही जानी और देखी
जा सकती हैं।
एक अंधे आदमी को हम समझाते रहें प्रकाश के संबंध में तो कुछ भी समझ में नहीं आएगा, लेकिन उसका आंख का इलाज हो सके, वह आंख खोल कर देख सके तो प्रकाश के संबंध में बिना समझाए सब कुछ समझ में आ जाता है। हमारी स्थिति भी कुछ आंख बंद किए लोगों जैसी है। आंख खोलने का उपाय किया जा सकता है,

लेकिन प्रकाश को समझने का कोई उपाय नहीं। यह आंख कैसे खुले? इसकी प्राथमिक तैयारी हमारी क्या होगी?
पहली तैयारी--इसे ध्यान में ले लेना जरूरी है कि हम कुछ करने को यहां इकट्ठे हुए हैं, कुछ सुनने और विचार के लिए नहीं। एक बार यह स्पष्ट हो मन में कि कुछ करने से रास्ता साफ होगा तो फिर मैं जो कहूंगा, आप उसे दूसरे ढंग से सुनेंगे।
एक घर में आग लगी हो और मैं जाकर वहां कहूं कि घर में आग लगी हुई है और
उस घर के लोग विचार करने लगें कि मैं क्या कह रहा हूं, मेरे कहने का क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है तो उस घर की आग को बुझाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। लेकिन जब मैं कह रहा हूं, घर में आग लगी हुई है तो मैं कोई उपदेश नहीं
दे रहा हूं, न मैं कोई दार्शनिक बात कह रहा हूं। मैं केवल एक सूचना दे रहा हूं कि इस घर से बाहर निकल जाना जरूरी है। घर से बाहर आने के लिए एक सृजनात्मक, एक सक्रिय कदम उठाने के लिए पुकार दे रहा हूं। घर में आग लगी है--यह न कोई सिद्धांत है, न कोई विवाद है, न कोई वाद है, न कोई फिलसफा है। यह केवल एक खबर है। और खबर भी उनके लिए जो घर से दौड़ कर बाहर आ सकते हैं, जो कुछ कर सकते हैं।
इधर जो बातें भी तीन दिन में मैं कहने को हूं, वह इसी दृष्टि से कि आपके भीतर कोई सक्रिय कदम पैदा हो सके। यह आपको प्राथमिक रूप से स्मरण रख लेना जरूरी है कि मेरा कहा हुआ, कोई सक्रिय कदम उठाने की दिशा में एक पुकार, एक आवाहन है--सुनने, समझने, तत्व-चिंतन के लिए नहीं, तत्व-साधना के लिए कोई दृष्टि है, यह पहली बात।
दूसरी बात, साधना-शिविर हम इकट्ठे हो जाएं एक जगह एकांत में, इससे कोई
भी हल नहीं होता। वहां हम कैसी दृष्टि लेकर इकट्ठे होते हैं, कैसा भाव लेकर इकट्ठे होते हैं--हमारा अंतर्भाव, हमारे अंतर्भाव की धारा क्या है, इस पर निर्भर है। यहां हम इतने मित्र इकट्ठे हुए हैं। इनमें कोई इस अवसर को मूल्यवान भी बना सकता है, कोई व्यर्थ भी खो सकता है।
हमारी जैसी आदतें हैं, वह जीवन को व्यर्थ खोने की आदतें हैं।
इन तीन दिनों को अपनी उन आदत के बाहर निकला लेना। आप जैसे आदमी अपने
घर पर थे, इन तीन दिनों में कम से कम वैसे आदमी मत रह जाना। मेकेनिकल, हमारी यांत्रिक आदतें हो जाती हैं। सुबह से उठ कर अखबार पढ़ना है, तो यहां भी सुबह से उठ कर हम अखबार की तलाश में पड़ जाएंगे। फिर मैं आपसे कहे देता हूं कि आप यहां नहीं आए; आप वहीं हैं, जहां थे। क्योंकि सुबह से उठ कर आपने अखबार खोजा, उसका मतलब यह है कि आप अपना घर खोज रहे हैं, अपनी रोज की जिंदगी खोज रहे हैं, आप अपने रोज का ढंग खोज रहे हैं। वह जो हैबिच्युअल, वह जो मेकेनिकल, यह जो यांत्रिक आपकी आदत है, वह आपने शुरू कर दी। उसे तोड़ना जरूरी है।
इन तीन दिनों में आपको नये आदमी की तरह जीने की कोशिश करनी चाहिए, ख्याल रख कर कि मैं कहीं वही ढर्रा, वही ढांचा, वही पैटर्न तो यहां भी पैदा नहीं कर रहा हूं, जो मेरे घर का है। अगर कर रहा हूं तो मैं अपने घर पर हूं, यहां आना फिजूल हो गया। अच्छा था, मैं घर पर ही रहता। वहां तकलीफ नहीं होती, वहां मेरा ढांचा पूरा जैसा चलता था, वह चलता।
और स्मरण रखिए कि जो व्यक्ति अपनी आदतों के ढांचों में इतना बंध जाता
है कि उनके बाहर जरा भी नहीं निकल सकता, उसके जीवन में कोई आत्मिक क्रांति कभी भी नहीं हो सकती, क्योंकि वह आदमी जिस खोल के भीतर जी रहा है, उसके बाहर झांकने की न हिम्मत करता है, न प्रयास करता है। जैसे कोई बीज के भीतर छिपा हुआ पौधा अपनी खोल को न तोड़ सके तो फिर कभी अंकुर नहीं बनेगा। फिर कभी आकाश की तरफ नहीं उठेगा, फिर कभी उसमें फूल नहीं आएंगे।
हम सब अपनी आदतों के घेरों में और खोल में सख्ती से बंद हैं। साधना- शिविर में पहली स्मरणीय बात है कि हम अपने आदत के खोल को थोड़ा तोड़ेंगे। स्मरण रहे कि मनुष्य की छोटी-छोटी आदत का एसोसिएशन है। उसकी छोटी-छोटी आदत का ढांचा है। एक छोटी सी आदत उसकी आत्मा तक को कैद करने का कारण बन सकती है।
मेरे एक परिचित थे, वह एक बहुत बड़े वकील थे। उनको हमेशा आदत थी कि जब
वह अदालत में आर्ग्यू करते, विवाद करते और कहीं कोई उलझन से भरा बिंदु आ

जाए, कोई ऐसी बात आ जाए, जिसको सोचना जरूरी हो जाए तो वह अपने कोट की बटन को पकड़ कर घुमाने लगते। और जैसे ही वह कोट की बटन घुमाते, उन्हें लगता कि उनके मस्तिष्क में कोई दरवाजा खुल गया है, कोई विचार दौड़ने लगे। उन्हें किसी भी मुकदमें में हराना बहुत मुश्किल था। लेकिन उनके एक विरोधी वकील ने यह आदत उनकी निरीक्षण कर ली कि जब भी वे उलझते हैं, तब कोट के बटन घुमाने लगते हैं। उसने उनके शोफर को मिला कर एक मुकदमे के वक्त उनके कोट की बटन तुड़वा दी। वह अदालत में जाकर कोट कंधे पर टांग कर खड़े हो गए। फिर उन्होंने कोट पहन लिया और वे विवाद करने लगे। ठीक जगह पर जहां उलझन आकर खड़ी हुई, उनका हाथ कोट के बटन पर गया। बटन वहां नहीं थी। उनके माथे पर एकदम पसीने की बूंदें आ गईं। उनके हाथ-पैर ढीले पड़ गए। वे कुर्सी पर आंख बंद करके बैठ गए। वह पहला मुकदमा हार गए! उन्होंने पीछे मुझे कहा कि मैं हैरान रह गया कि एक छोटी सी बटन से क्या इतना संबंध हो सकता है? क्या इतना संबंध हो सकता है एक छोटी सी बटन से! क्या मैं इतना गुलाम हो सकता हूं कि बटन नहीं थी तो सब गड़बड़ हो गया?
हम सब भी इतने ही गुलाम हैं। और हम अगर अपने जीवन की दिशा को बदलना चाहते हों तो हमारे आस-पास हमने जो आदतों का एक घेरा बना रखा है, छोटी-छोटी बटनों का ही सही, उस घेरे को तोड़ देना जरूरी है।
इन तीन दिनों में इस बात का सचेतन प्रयास करें। कांशस एफर्ट इस बात का करें। ध्यान रखें कि मैं अपनी आदतों के घेरे में वापस तो नहीं लौटा जा रहा हूं। यहां कोई अखबार पढ़ने की जरूरत नहीं, न यहां रेडियो सुनने की जरूरत है, न एक-दूसरे से व्यर्थ की बातें करने की जरूरत है। तीन दिन के लिए विश्राम ले लें अपनी सब आदतों से।
यहां अगर पति और पत्नी भी साथ आए हैं तो उन्हें एक-दूसरे को पति और पत्नी मानने की कोई भी जरूरत नहीं। इन तीन दिन के लिए छुट्टी ले लें पत्नी होने से और पति होने से। इन तीन दिन के लिए वह सारे भाव घर पर छोड़ आएं, जो घर के घेरे में हमको कैद रखते हैं, अन्यथा आप वहां से यहां कभी नहीं आ पाएंगे। जमीन पर यात्रा कर लेनी बिल्कुल आसान है। असली यात्रा मन के तल पर करने की जरूरत है। साधना-शिविर नारगोल में नहीं हो रहा है, नारगोल में हो रहा होता तो आप आ चुके वहां। साधना-शिविर आपके भीतर होगा और वह यात्रा अगर आप करते हैं सचेतन रूप से, तो ही हो सकती है; अन्यथा रेलगाड़ियां हमें कहीं भी पहुंचा देती हैं, रास्ते हमें कहीं भी पहुंचा देते हैं; सिर्फ एक जगह के बाहर हमें नहीं ले जा पाते, अपने बाहर नहीं ले जा पाते। हम हमेशा अपने साथ मौजूद हो जाते हैं।
साधना-शिविर में बहुत जरूरी है कि आप अपने को थोड़ा सा घर छोड़ आते। घर छोड़ आए हों--न छोड़ आए हों तो अभी छोड़ दें। इन तीन दिनों में आप एक नए आदमी की तरह जीएं, जिसका कोई ढांचा नहीं है, कोई आदत नहीं है। और जो-जो आदतें आपकी हैं, और जो-जो आपका ढांचा है, जो मन को जकड़ता है, उससे थोड़े सावधान रहने की कोशिश करें।
हो सकता है आपको विवाद करने की आदत हो। किसी ने कुछ कहा और आप विवाद करने लगे। तो थोड़ा सचेत होकर देखें कि मैं कहीं अपनी विवाद करने की आदत में तो नहीं पड़ रहा हूं। और जैसे ही ख्याल आ जाए, फौरन क्षमा मांग लें और कहें, "कि भूल गया, मैं भूल गया। मेरी आदत वापस लौट आई। मैं क्षमा चाहता हूं और वापस लौटता हूं। इस आदत को यहीं छोड़ देता हूं।"
दिन भर हमारी बातें करने की आदतें है! कुछ न कुछ हम बात कर रहे हैं! मौन बैठने का तो कोई सवाल नहीं है। और आपको पता ही नहीं कि बात करने वाले लोग कभी भी जीवन के सत्य को नहीं जान सकते हैं। केवल वे ही लोग, जो कभी मौन होना भी जानते हैं, वे ही पहुंच पाते हैं।
मौन हुए बिना कोई स्वयं के सत्य तक न कभी पहुंचा है, न कभी पहुंच सकता है। लेकिन हम चौबीस घंटे बातचीत में तल्लीन हैं। एक घड़ी हमें मौका मिल जाए चुप होने का तो बड़ी बेचैनी, और बहुत कठिनाई शुरू हो जाती है। ऐसा लगने लगता है कि कैसे गुजरेगी यह घड़ी!
यहां तीन दिन इसका प्रयोग करें। ज्यादा से ज्यादा मौन रहें। कम-से-कम बोलें। बहुत जरूरी हो तो बोलें, बिल्कुल टेलीग्राफिक जैसे कि आपको पैसे ठुक रहे हों। एक-एक शब्द बोलने के। आदमी तार करता है तो लंबी-लंबी बातें

नहीं लिखता। दस शब्द लिख देता है, आठ शब्द लिख देता है; एक-एक काटता जाता है कि यह व्यर्थ है, इसकी कोई जरूरत नहीं है। और आठ शब्दों का तार उतना काम करता है कि जितनी आठ हजार शब्दों की चिट्ठी नहीं करती। क्योंकि शब्द जितने जरूरी रह जाते हैं, जितने महत्वपूर्ण हो जाते हैं, उतने ही कनसनट्रेटेड हो जाते हैं। उतने ही एकाग्र हो जाते हैं, उतनी ही उनमें तीव्रता और बल आ जाता है। जितने बिखर जाते हैं, जितने ज्यादा हो जाते हैं, उतनी तीव्रता कम हो जाती है, उतना बिखराव हो जाता है। जैसे सूरज की किरणों को हम इकट्ठा कर लें किसी कांच से तो आग पैदा हो जाती है और बिखरी हुई किरणें पड़ती रहती हैं तो कोई आग पैदा नहीं होती।
जो लोग मौन होने की कला सीख जाते हैं, उनके शब्दों में प्राण और जादू आ जाता है। उनका एक-एक शब्द आग पैदा करने की कूबत और शक्ति को उपलब्ध कर लेता है; लेकिन हम चौबीस घंटे बोले जा रहे हैं। कुछ भी बोले जा रहे हैं, जिसकी कोई जरूरत न थी। जिसका कोई उपयोग न था, जिससे दुनिया में किसी का हित नहीं हुआ, वह हम बोले चले जा रहे हैं!
इन तीन दिनों में ख्याल रखें, ऐसा एक शब्द भी आपके ओंठों से बाहर न आए,
जो अनावश्यक था। और आप हैरान हो जाएंगे, आवश्यक शब्द इतने कम हैं, आवश्यक बातें इतनी कम हैं कि आप पाएंगे कि घंटों मौन में बीते जा रहे हैं। कभी कोई एकाध शब्द...
लाओत्सु का नाम आपने सुना होगा। कोई ढाई हजार वर्ष पहले चीन में हुआ। रोज सुबह घूमने जाता था। एक मित्र भी उसके साथ घूमने जाता था। मित्र आकर उसे करता नमस्कार। आधा घंटे बाद लाओत्सु कहता नमस्कार! आधा घंटा चलने के बाद इतनी ही कुल बात होती थी। बस ये नमस्कार होते थे। घंटे-दो घंटे घूम कर पहाड़ी से वे वापिस लौटते थे।
एक दिन मित्र के साथ एक मेहमान भी आ गया। फिर वे तीनों घूमने गए। रास्ते में उस मेहमान ने इतना ही कहा, कितनी खूबसूरत सुबह है, कितना अच्छा मौसम है। लेकिन वे दोनों चूंकि चुप थे, वह इतना कह कर, वह भी चुप हो गया। फिर वे वापस लौट आए।
घर आकर लाओत्सु ने अपने मित्र के कान में कहा कि अपने मेहमान को कल से
मत लाना। बहुत बातूनी मालूम पड़ता है। हमको भी दिखाई पड़ रहा था कि सुबह बहुत सुंदर है, इसे कहने की जरूरत क्या थी? अनावश्यक था? हम भी मौजूद थे, हम भी उस सुबह को देख रहे थे। इसे कहने की क्या जरूरत थी? इस बातूनी मित्र को साथ मत लाना।
आवश्यक-अनावश्यक का ऐसा स्पष्ट भेद मन में होना चाहिए कि मैं क्या कर रहा हूं। वह आवश्यक है या अनावश्यक, और अगर बीच में भी ख्याल आ जाए कि अनावश्यक बात मैंने कही, आधी हो गई तो आधी ही छोड़ देना इन तीन दिनों में। वहीं छोड़ देना, वहीं से क्षमा मांग लेना कि गलती हो गई। मैं व्यर्थ की बात कर रहा हूं, आदत के कारण किए चला जा रहा हूं।
ये तीन दिन मौन के दिन बनने चाहिए। इस समुद्र का किनारा इतना अदभुत है, इसके पास अकेले में जाकर बैठना। ये सरू के दरख्त इतने सुंदर हैं, इनके पास बैठना! न अपनी पत्नी से बात करना, न अपने मित्र से। सरू के दरख्तों से कर लेना, समुद्र से कर लेना।
यहां शिविर में आप बिल्कुल अकेले हैं-- इस भांति के भाव-बोध को... तीसरी बात स्मरण रखना। यहां ये छह सौ लोग नहीं हैं, यहां मैं अकेला हूं। क्योंकि हम जिस दिशा में जाना चाहते हैं, जिस ध्यान की दिशा में, जिस साधना की दिशा में, वहां कोई संगी-साथी नहीं है। वहां हर आदमी अकेला है। परमात्मा के रास्ते पर कोई भीड़-भाड़ नहीं जाती। वहां एक-एक आदमी ही जाता है। तो यहां हम सब अकेले हैं। साधक की हैसियत से कोई भीड़-भाड़ का संबंध नहीं। यहां इतने लोग हैं, लेकिन प्रत्येक को यह अनुभव करना है तीन दिन कि मैं बिल्कुल अकेला हूं। मेरे साथ यहां कोई भी नहीं है। मुझे ऐसे ही जीना है तीन दिन, जैसे मैं बिल्कुल अकेला हूं। कंपनी मत खोजें। यहां कोई संगी, साथ मत खोजें। यह मत कहें कि मुझे मेरे मित्रों के साथ ठहरा दें। यहां कोई है ही नहीं।
यहां आप बिल्कुल अकेले हैं और यहां तीन दिन बिल्कुल अकेले, टोटल लोनलीनेस में जीने का प्रयोग करना है। अकेले जीने में जो समर्थ हो जाता

है, उसके लिए वे द्वार खुल जाते हैं, जो भीड़ में रहने वालों के लिए हमेशा बंद है। अकेले होने का भाव--अभी रात आप जाकर सोएंगे तो इस भांति, जैसे आप बिल्कुल अकेले हैं, इस बड़े जगत में कोई भी नहीं है। आप बिल्कुल अकेले हैं, ऐसा चुपचाप अकेले नींद में डूब जाएं। सुबह जब उठें, तब भी ऐसे कि जैसे बिल्कुल अकेले हैं।
और सच है कि आदमी अकेला है। जन्म अकेला है, मौत अकेली है; बीच में बहुत भीड़-भाड़ दिखाई पड़ती है तो हम सोचते हैं, कोई हमारे साथ है! शरीर से शरीर टकरा जाते हैं, तो हम सोचते हैं, कोई हमारे साथ है। शब्द से शब्द बात कर लेते हैं, तो हम सोचते हैं, कोई हमारे साथ है। लेकिन कोई किसी के साथ नहीं। यात्रा बिल्कुल अकेली है। एक-एक आदमी अकेला है। भीड़ के बीच भी एक-एक आदमी अकेला है। कोई किसी के साथ नहीं है।
कम से कम तीन दिन तो इसके स्मरण को गहरा करें कि मैं बिल्कुल अकेला हूं। इस स्मरण के परिणाम होंगे। जब आपको ख्याल आएगा कि मैं बिल्कुल अकेला हूं तो इसके साथ ही एक अदभुत मौन आपके भीतर पैदा होना शुरू हो जाए। क्योंकि बात वहां शुरू होती है, जहां कोई और है। संबंध वहां बनते हैं, जहां कोई और है। झगड़े, मित्रता और शत्रुता वहां खड़ी होती है, जहां कोई और है। जहां मैं अकेला हूं, बिल्कुल अकेला, वहां एक कोरा सन्नाटा भीतर पैदा हो जाए तो आश्चर्य नहीं।
मौन एकाकीपन की छाया है।
तो अकेले होने का भाव इन तीन दिनों में गहरा से गहरा होना चाहिए। किसी
को बाधा न दें, किसी के अकेलेपन को न तोड़ें। कोई अकेला झाड़ों के नीचे बैठा हो तो उसके पास न जाएं, पहुंच जाएं भूल से तो फौरन हट जाएं, जैसे ही ख्याल आ जाए। हरेक को अकेला होने दें, अकेला रहने दें, अकेला जीने दें, अकेला अनुभव करने दें।
अगर तीन दिन कोई इनटेंसिटी से, कोई पूरी तीव्रता से अकेलेपन का अनुभव करे तो तीन दिन में वह क्रांति हो जाएगी, जिसके लिए हम यहां इकट्ठे हुए हैं।
तीसरा सूत्र यह स्मरण रखें कि हम बिल्कुल अकेले हैं, एकदम अकेले--एकदम अकेले हैं, कोई नहीं साथ।
एक यूनान का फकीर था गुरजिएफ। एक छोटे से गांव में एक प्रयोग कर रहा था। तीस लोगों को एक बंगले में बंद कर रखा था। और उन तीस लोगों से कहा था कि तुम तीस यहां नहीं हो, एक-एक ही है यहां। हरेक को यही अनुभव करना है कि मैं अकेला हूं। तीन महीने तक यह प्रयोग चलेगा। कोई यह ख्याल न करे कि दूसरा यहां मौजूद है। उनतीस लोग यहां नहीं है, अकेले हो तुम। न बोलना है, न किसी की तरफ आंख उठा कर देखना है; क्योंकि आंखों से भी बोला जा सकता है। न स्मरण रखना है कि कोई यहां है-अकेले, बिल्कुल अकेले हो। तीन महीने के उस प्रयोग ने उन लोगों को कहां पहुंचा दिया!
तीन महीने के उस प्रयोग में उन्होंने वह अनुभव किया, जो कि आदमी तीन जन्मों भी मेहनत करता तो अनुभव नहीं हो पाता। तीन महीने में वे परिपूर्ण शांत हो गए, क्योंकि जहां दूसरा मौजूद नहीं है, वहां बोलने का उपाय नहीं। जहां दूसरा है ही नहीं, वहां मन में भी बात करने का कोई उपाय नहीं। मन में भी हम तभी बात कर पाते हैं, जब हम दूसरे को कल्पित कर लेते हैं, दूसरे को खड़ा कर लेते हैं, दूसरे की इमेज बना लेते हैं। दूसरे की प्रतिमा खड़ी हो जाती है, तब हम बात कर पाते हैं। जब कोई दूसरा है ही नहीं, मैं बिल्कुल अकेला हूं, इसी भाव में वे तीन महीने तक डूबते चले गए, डूबते चले गए, तो सारी वाणी समाप्त हो गई। सारा संवाद बंद हो गया, सारे विचार गिर गए, और निर्विचार मौन में उन्होंने उसे जान लिया, जो उनके भीतर छिपा था।
जब तक हम दूसरे से बोल रहे हैं, तब तक हम उसे नहीं जान सकेंगे, जो हम हैं। जो "मैं" हूं, उसे जानना हो, तो "तू" से छुटकारा चाहिए। वह जो दूसरा है, उससे छुट्टी चाहिए, उससे मुक्ति चाहिए, उससे अवकाश चाहिए। जब तक हम "तू" से बंधे हुए हैं, तब तक "मैं" को नहीं जाना जा सकता कि वह क्या है। क्योंकि हमारी नजर, हमारी दृष्टि, हमारा ध्यान सब दूसरे पर बहा जा रहा है, दूसरे पर बहा जा रहा है। हम चौबीस घंटे दूसरे पर बिखरे जा रहे हैं, चौबीस घंटे दूसरे पर घूम रहे हैं, भटक रहे है और स्वयं पर आना नहीं हो पाता है। यह स्वयं पर

आना हो सकता है, लेकिन उसके लिए अकेलेपन का, बिल्कुल लोनलीनेस का ख्याल, तीव्र भाव चाहिए।
बोधिधर्म एक भिक्षु था। एक सुबह एक युवक उसके पास आया और बोधिधर्म से पूछने लगा कि मैं कौन हूं, मुझे इसका उत्तर चाहिए। बोधिधर्म बड़ा कृपालु, बड़ा दयालु व्यक्ति था। उसकी दया आपको अभी पता चल जाएगी। उसने चांटा-जोर से एक चांटा उस युवक को मारा। वह युवक तो तिलमिला गया और उसने कहा, यह आप क्या करते हैं? मैं पूछने आया हूं कि मैं कौन हूं, और आप मारते हैं!
वह युवक उठा और वापस लौट गया। उसने जाकर एक दूसरे भिक्षु को कहा कि मैं गया था बोधिधर्म से पूछने, मैंने बड़ा नाम सुना था उनका। उन्होंने मुझे चांटा मार दिया है। उस भिक्षु ने कहा, बोधिधर्म बहुत दयालु है। क्या तू मुझसे पूछने आया है? अगर मुझसे पूछने आया है तो ठहर, मैं अपना डंडा उठा लाऊं।
वह तो बहुत हैरान हो गया, लेकिन लौटते समय उसे भी ख्याल आया कि बोधिधर्म को क्या प्रयोजन है मुझे मारने से? वह मुझे मारेगा क्यों? अपने हाथ को तकलीफ ही दी और तो कुछ नहीं। जरूर कोई बात होगी, जरूर कोई बात होगी। वह फिर दूसरे दिन सुबह पहुंच गया और बोधिधर्म के पास जाकर बैठा ही था
कि बोधिधर्म ने कहा, फिर आ गए? पूछोगे आज फिर? अगर पूछोगे तो फिर मारूंगा, और अगर आज नहीं भी पूछा तो भी मारूंगा, बोलो क्या करते हो?
वह युवक तो घबड़ाया और नहीं बोल सका। बोधिधर्म हंसने लगा। उसने कहा, पागल, जब तू मुझसे पूछने आ गया कि मैं कौन हूं! दूसरे से पूछता है कि मैं कौन हूं, तो उत्तर तुझे कभी भी नहीं मिलेगा। और जो भी उत्तर मिलेंगे, सब झूठे मिलेंगे, क्योंकि दूसरा यह उत्तर कैसे दे सकता है कि तू कौन है। यह उत्तर तो स्वयं से ही आएगा। इसलिए मैंने तुझे चांटा मारा कि शायद मेरे चांटा मारने से तू मुझसे विरत हो जाए और अपने में लौट जाए। मेरे चांटा मारने से मैंने कोशिश की, ताकि तू अपने में लौट जाए, ताकि तू वापस लौट जाए। हम अपने में वापस लौट जाएं तो शायद उसका पता चल जाए, जो हम हैं। और उसका पता चल जाना ही सत्य का पता चल जाना है। और उसका पता चल जाना ही प्रभु का पता चल जाना है। और उसका पता चल जाना ही जीवन के घर में रोशनी का जल जाना है, सुगंध का फैल जाना है।
तो मैं तीन दिन पूरी कोशिश करूंगा कि आप अपने पर लौट जाएं। मैं उतना दयालु नहीं हूं कि मैं आपको चांटा मारूं। लेकिन पूरी कोशिश करूंगा कि आप अपने पर वापस लौट जाएं। और इस अपने पर वापस लौटने में आपका जो सहयोग होगा, वह यह कि "तू" को भूल जाइए, यहां कोई दूसरा नहीं है। दि अदर--वह जो दूसरा है, उसको छोड़िए, उसको भूल ही जाइए कि वह है। इसीलिए दरख्तों के साथ आसानी हो जाती है, समुद्रों के साथ आसानी हो जाती है, पहाड़ों के साथ आसानी हो जाती है, क्यों? क्योंकि दरख्त को "तू" कहने का आपको ख्याल नहीं आता, समुद्र को "तू" कहने का ख्याल नहीं आता।
असली कठिनाई ह्यूमन रिलेशनशिप की है। वह आदमी के साथ हमेशा "तू" मौजूद हो जाता है। इसलिए थोड़ी देर को यहां समुद्र के पास जाना। समुद्र आपको अपनी तरफ वापस लौटा देता है, क्योंकि वहां कोई "तू" नहीं है। दरख्तों के पास बैठना। दरख्त आपको अपने पास वापस लौटा देते हैं, क्योंकि वहां कोई "तू" नहीं है। आदमी के पास कठिनाई है अभी, क्योंकि वहां उसकी मौजूदगी तत्क्षण आपके चित्त को उसके आस-पास घुमाने लगती है। आप अपने पर नहीं लौट पाते, उसके पास पहुंच जाते है। एक दिन जरूर ऐसा आ जाता है, जब आदमी के पास भी आप इसी तरह बैठ सकते हैं, जैसे वृक्ष के पास। आदमी के पास भी इसी भांति बैठ सकते हैं, जैसे सागर के पास।
जिस दिन कोई आदमी के पास भी इस तरह बैठ जाता है, उस दिन आदमी के भीतर उसे वह दिखाई पड़ता है, जो न वृक्षों में दिखाई पड़ सकता, न सागरों में दिखाई पड़ सकता है। तब तो उसे आदमी के भीतर, वह सबसे बड़ी जो मिस्ट्री है, जीवन का वह जो रहस्य है, उसके दर्शन हो जाते हैं। लेकिन उसकी तैयारी चाहिए। एक दिन आता है कि आप आदमी के साथ भी ऐसे बैठ सकते हैं, जैसे कोई नहीं है।
लेकिन वह घड़ी धीरे-धीरे आ सकती है। उसके लिए कुछ तैयारी और कुछ भूमिका
हो जानी चाहिए। इन तीन दिनों में उसका हम प्रयास करेंगे। इन तीन दिनों में

इस बात की कोशिश करेंगे कि हम बिल्कुल अकेले हैं। अकेलेपन को खोजें, एकांत में बैठें। और मैंने जो तीन सूत्र कहे, उन पर ध्यान रखें।
अभी जब आप जाकर सोएंगे बिस्तर पर, तो इसी भांति सो जाएं कि जैसे इस बड़े विराट जगत में आप बिल्कुल अकेले हैं, जैसे इस पूरी पृथ्वी पर आप बिल्कुल अकेले हैं, इन चांद-तारों की दुनिया में आप बिल्कुल अकेले हैं। कोई नहीं है, आप बिल्कुल अकेले हैं। इस अकेलेपन में चुपचाप डूबते जाएं और सो जाएं। सुबह ही आप एक अनूठा भाव लेकर वापस जाग सकेंगे--वह अकेलेपन का भाव।
साधक अकेला है। उसका न कोई संगी है, न कोई साथी है, न कोई भीड़ है, न कोई संप्रदाय। और प्रभु के मंदिर की जो यात्रा है, वह बिल्कुल अकेले में पूरी करनी पड़ती है।
इन तीन दिनों में मैं उस अकेलेपन की दिशा में आपको ले जाने की कोशिश करूंगा, लेकिन आपके सहयोग के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। आपका सहयोग आप अपने पूरे मन से दे सकें तो बात इतनी आसान है, जिसका कोई हिसाब नहीं और आपका सहयोग न हो तो बात इतनी कठिन है, इतनी मुश्किल-असंभव। कठिन भी नहीं, असंभव भी है।
एक छोटी सी घटना, और अपनी चर्चा मैं पूरी करूंगा। फिर आप चुपचाप जाएं
और सो जाएं। यहां से जाते समय भी बातचीत न करें। कुछ मत कहें किसी से। चुपचाप चले जाएं। और तीन दिन मैं ध्यान रखूंगा कि आप बातचीत तो नहीं कर रहे हैं। आप व्यर्थ की बातचीत में तो नहीं लगे हैं। चुपचाप जितना चुप हो सके--तीन दिन ऐसे जैसे शब्द खो गए और आप गूंगे हो गए हैं। आपसे बोला ही नहीं जाता। आपके ओंठ बंद हो गए हैं।
एक सम्राट एक बहुत बड़े संगीतज्ञ के संगीत को सुनने को बहुत आतुर था। चाहता था कि संगीत सुनने मिल जाए। उसने अपने दरबारी भेजे, वजीर भेजे और संगीतज्ञ को कहलवाया कि दरबार में आ जाओ, तुम जो कुछ भी मांगोगे मैं दूंगा, लेकिन मुझे तुम्हारी वीणा सुननी है।
उस संगीतज्ञ ने कहा कि शायद उन्हें पता नहीं कि संगीत कोई ऐसी बात नहीं कि किसी की आज्ञा से पैदा हो जाए। उन्होंने बुलाया, उनका धन्यवाद। उन्होंने आदेश भेजा हो तो मैं आ सकता हूं, वीणा बजाऊंगा भी, लेकिन वह, वह वीणा न होगी, जो मैं बजाता हूं। न मैं वह संगीतज्ञ होऊंगा, जिसको वे सुनना चाहते हैं। लेकिन अगर उन्होंने प्रार्थना की हो तो फिर मैं किसी दिन आऊंगा, लेकिन उस दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, आज नहीं। जब मौज में होगा मेरा मन और मेरे पैर उठ जाएंगे दरबार की तरफ तो मैं आ जाऊंगा।
राजा लेकिन बहुत बेचैन हो गया। और भी बेचैन हो गया। उसे पहली दफा पता चला कि आदेश और प्रार्थना में फर्क है।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह प्रार्थना से आता है; जो भी व्यर्थ है, वह आदेश से मिल जाता है।
लेकिन प्रार्थना के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। आदेश अभी, इसी क्षण पूरा भी हो सकता है। लेकिन राजा को यह भी दिखाई पड़ गया है कि आदेश से वह संगीतज्ञ आ जाएगा, तो जिसे मैं सुनना चाहता हूं, नहीं सुन पाऊंगा। बजा देगा!
लेकिन वह बड़ा आतुर था। उसने अपने दरबार के संगीतज्ञ को कहाः तुम कोई रास्ता खोज निकालो। उसने कहाः रास्ता हो सकता है। वह यह नहीं कि संगीतज्ञ दरबार में आए, वह यही हो सकता है कि हम संगीतज्ञ के घर चलें।
राजा ने कहाः इसमें क्या फर्क है, संगीतज्ञ यहां आए या हम उसके घर जाएं? उस संगीतज्ञ ने कहा, बहुत फर्क है। बहुत फर्क है, वह आदेश और प्रार्थना का ही फर्क है।
जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, उसके पास हमें स्वयं ही जाना पड़ता है। घर बैठ कर उसे बुलाना नहीं पड़ता है। हमें चलने पड़ते हैं कुछ कदम।
राजा राजी हो गया। उस संगीतज्ञ ने, जो एक फकीर था और दरिद्र आदमी था और भिखमंगों के कपड़े पहनता था, उसने राजा से कहा, राजा के वस्त्रों में संगीतज्ञ के घर पहुंचना नहीं होगा। फिर तो वह वही बात होगी। उसमें कोई फर्क न पड़ेगा। आप भी मेरे जैसे वस्त्र पहन लें।
राजा ने कहाः इन वस्त्रों से क्या बाधा पड़ेगी? हम संगीत सुनते चलते हैं, वस्त्र क्या करेंगे?

उस संगीतज्ञ ने कहा कि बहुत कुछ करेंगे। आप वहां भी राजा बने रहे तो फिर संगीत जो हम सुनना चाहते हैं, वह नहीं सुना जा सकेगा।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह सम्राटों की भांति नहीं, याचकों की भांति उपलब्ध होता है। वहां हाथ फैला कर पहुंचना पड़ता है।
और इन वस्त्रों में, आप हाथ न फैला सकेंगे। ये वस्त्र सिंहासनों पर बैठने के आदी हैं। ये धूल में उस गरीब संगीतज्ञ के द्वार पर न बैठ सकेंगे। राजा राजी हुआ। उसने दरिद्र के वस्त्र पहने और वे दोनों, रात उतरने को थी, सांझ होने को थी, तब उस संगीतज्ञ के द्वार पर पहुंच गए। राजा का संगीतज्ञ अपने साथ अपनी वीणा ले गया था। वे दोनों द्वार पर बैठ गए। उसने वीणा बजानी शुरू कर दी। उसने वीणा पर वही, वही बजाना शुरू कर दिया, जो उस संगीतज्ञ के लिए सबसे ज्यादा प्यारा था, जिसमें उसकी कुशलता थी। लेकिन बीच-बीच में दो-चार भूलें कीं, जान कर कीं। उस संगीतज्ञ ने द्वार खोल दिया और कहा कि कौन, कौन बजा रहा है? और कौन गलत बजा रहा है?
उस संगीतज्ञ ने कहा कि मैं और ज्यादा नहीं जानता हूं। जैसा जानता हूं, बजा रहा हूं। कोई बता दे तो मैं सीखने को हमेशा तैयार हूं।
वह संगीतज्ञ अपनी वीणा उठा लाया भीतर से और उसने बजाना शुरू कर दिया। राजा तो मंत्रमुग्ध हो गया। जब बज चुकी वीणा तो उसने कहा, शायद तुम पहचाने नहीं, मैं सम्राट हूं, जिसने तुम्हें बुलाया था। और आखिर देखो, मैंने सुन लिया न।
उस संगीतज्ञ ने कहाः यह बात और है। तुम एक याचक की भांति आए हो, मुझे बुलाया नहीं गया। फिर तुमने वह अवसर, वह सिचुएशन, वह परिस्थिति पैदा कर दी कि मेरे भीतर भाव जग गया और मैं बजाने लगा। मुझे आदेश नहीं दिया गया है। परमात्मा के द्वार पर भी ऐसे ही जाना होता है। ऐसे ही कोई आदेश नहीं देने पड़ते। एक प्रार्थी का भाव लेकर। राजाओं के वेश में नहीं, दीन-हीन, ह्युमिलिटि, विनम्रता से; हाथ फैलाए हुए। सिंहासनों पर बैठे हुए नहीं। और जितनी दीनता से--क्राइस्ट कहते थे, पुअर इन स्प्रिट, जो इतने भाव में दीन, असहाय, विनम्र, आतुर और याचक होकर उस द्वार पर खड़ा हो जाता है, फिर जो भी उससे बनता है, जैसे भी भूल-चूक भरे शब्दों में प्रार्थना करने लगता है; जैसे भी बनता है, भूल-चूक भरी वीणा बजाने लगता है; तब वे द्वार खुल जाते हैं, उस परम संगीतज्ञ के और वह अपनी वीणा उठा कर आ जाता है। लेकिन इतने दूर तक हमें यात्रा करनी पड़ती है। इस यात्रा के लिए हमें तैयार हो जाना जरूरी है।
आज रात से ही उसकी तैयारी शुरू करें, मैंने जो तीन सूत्र कहे। सुबह से
उन पर प्रयोग शुरू करें। फिर हम साधना के लिए और क्या जरूरी है, क्या महत्वपूर्ण है, किन-किन कदमों को उठाएंगे, उनकी हम बात करेंगे और प्रयोग करेंगे।

आज की पहली बैठक पूरी हुई।

अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

शून्य की नाव
दूसरा प्रवचन

अज्ञान का बोध
(3 मई 1968 सुबह)

प्रिय आत्मन्!
एक रात... आधी रात हो गई और सुकरात घर नहीं लौटा था। उसके मित्र और उसके शिष्य चिंतित हो गए। सुबह से ही वह घर के बाहर था और आधी रात तक न गांव में देखा गया था, न गांव में किसी को मिला था! और अब आधी रात हो गई है, अब तक उसका कोई पता नहीं! फिर आधी रात वे उसे ढूंढने निकले। गांव की गलियों- गलियों में खोज डाला। फिर गांव के बाहर। चांदनी की रात थी। वे दूर-दूर गांव के बाहर भी उसे खोजते फिरे। सुबह होने के करीब, वह एक वृक्ष के पास बैठा हुआ मिला। रात के अंतिम तारे डूबने के करीब थे और उसकी आंखें आकाश की तरफ लगी हुई थीं। वह जैसे पत्थर हो गया हो, रात भर की सर्दी में जैसे जम गया हो!
मित्रों ने जाकर उसे हिलाया। वह जैसे इस पृथ्वी पर नहीं था, कहीं और था, किसी दूसरे लोक में, शायद उन तारों के पास, जिन्हें वह रात भर देखता रहा था। उसने आंखें नीचे कीं। वह हिला। उसने अपने मित्रों को पहचाना और उसने कहाः कितना समय बीत गया होगा? मित्रों ने कहाः पूरी रात बीत गई है। दूसरी सुबह होने के करीब है। तुम सुबह से निकले हो, कहां थे?
सुकरात ने कहा कि मैं यहीं आ गया। सुबह के उगते सूरज को देखा, दोपहर होती देखी, सांझ का सूरज डूबते देखा। सूरज के साथ दिन भर यात्रा करता रहा। फिर रात आ गई, फिर चांद आ गया, फिर सितारे आ गए, फिर उन्होंने मुझे भटका लिया, फिर मैं उनमें डूब गया और मुझे पता भी नहीं कि कितना समय बीत गया है! उसके मित्र पूछने लगे, क्या था चांद-तारों में ऐसा? क्या था सूरज में ऐसा? जो चौबीस घंटे बीत गए और तुम्हें कुछ पता नहीं!
सुकरात ने कहाः आश्चर्य तुम्हें होता है, होना मुझे चाहिए। क्या नहीं
है चांद-तारों में, क्या नहीं है सूरज में, जो आदमी को मंत्र-मुग्ध न कर ले, उसे विस्मय से विमुग्ध न कर दे, उसे अपने पास न बुला ले; अपने गीत में, अपने संगीत में न डुबा ले! क्या नहीं है? मुझे पूछना चाहिए, उलटा तुम्हीं मुझसे पूछते हो कि क्या है चांद-तारों में! जो रात बीत गई और तुम्हें पता नहीं! धन्य हैं वे लोग, जो चांद-तारों में, वृक्षों में, समुद्रों में, पहाड़ों में, मनुष्य की आंखों में कुछ खोज लेते हैं, जिन्हें वहां कुछ दिखाई पड़ जाता है। शायद वे ही लोग आंखों वाले हैं, बाकी सारे लोग अंधे हैं।
हम भी अंधे हैं। हमें भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता है!
यह हमारा अंधापन कैसे निर्मित हो गया है, उस संबंध में थोड़ी बात जान लेनी जरूरी है और इस अंधेपन को हम कैसे तोड़ दें, वह भी समझ लेना आवश्यक है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति साधना के जगत में प्रवेश करने में असमर्थ होगा, अगर वह जीवन के प्रति एक बुनियादी अंधेपन को लेकर चलता है।
हमें फूल ही दिखाई नहीं पड़ते तो हमें परमात्मा कैसे दिखाई पड़ सकता है? हमें सागर का गर्जन भी सुनाई नहीं पड़ता तो हमें प्रभु की वाणी कैसे सुनाई पड़ सकती है?
हमें चांद-तारे ही दिखाई नहीं पड़ते तो हमें वह रोशनी कैसे मिल सकती है, जो जीवन का प्राण है?
हमें कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है! हम करीब-करीब सोए-सोए गुजर जाते हैं! आंख बंद किए-किए गुजर जाते हैं! जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन की लहरें कहीं भी हमारे प्राणों को आंदोलित नहीं करती है, कोई संवेदना हमें नहीं पकड़ लेती है, कोई हमें मंत्रमुग्ध नहीं कर पाता है!
धर्म का पहला संबंध जीवन के रहस्य के अनुभव से है--वह जो जीवन की मिस्ट्री है। और समग्र जीवन ही रहस्यपूर्ण है--एक छोटे से पत्थर से लेकर आकाश के सूरज तक, एक छोटे बीज से लेकर आकाश को छूते वृक्षों तक--सभी कुछ, जो भी है, अत्यंत रहस्यपूर्ण है।

लेकिन वह रहस्य हमें दिखाई नहीं पड़ता! क्योंकि रहस्य को देखने के लिए जैसी पात्रता चाहिए, शायद हमने अर्जित नहीं की। जैसी रिसेप्टिविटी चाहिए, जैसी ग्राहकता चाहिए, हृदय के द्वार जैसे खुले चाहिए--वे शायद हमारे हृदय के द्वार खुले नहीं, बंद हैं। शायद हम किसी कारागृह के भीतर बैठे हैं, सब खिड़कियों और द्वारों को बंद करके, आंखों को बंद करके! और तब अगर हमारा जीवन अंधकारपूर्ण और उदासी से भर गया हो, गंदी हवाओं ने और दुर्गंध ने हमें घेर लिया हो, चिंताओं ने और तनावों ने हमारे घर में निवास बना लिया हो तो आश्चर्य नहीं हो सकता है। यह स्वाभाविक है, यह होगा।
कैसे हमने जीवन के प्रति यह जड़ता अंगीकार कर ली है! और फिर हम पूछते हैं ईश्वर है? और हम फिर पूछते हैं, आत्मा अमर है? और फिर हम सारे प्रश्न पूछते हैं! लेकिन एक प्रश्न हम पूछना भूल जाते हैं-हमारे पास जीवन के रहस्य को देखने की आंखें हैं या नहीं?
जीवन के रहस्य को देखने की आंख मनुष्य रोज-रोज खोता चला गया है। जितने
हम सभ्य होते गए हैं, उतनी हमने जीवन के रहस्य को देखने की आंख खो दी है। जितने हम समझदार होते गए हैं, जितना हमारा ज्ञान बढ़ता गया है, उतना हमने जीवन का जो विस्मय है, जीवन में जो अबूझ है, जीवन में जो पहेली की तरह है; जिसका कोई सुलझाव नहीं, उस सबसे हमने अपने को हटा लिया है, उसकी तरफ पीठ कर ली।
जीवन एक अबूझ पहेली है, यह हमें भूल गया है--हमारे ज्ञान में, हमारी जानकारी में, हमारी समझ में, हम ऐसा समझने लगे हैं, आदमी ने यह निष्कर्ष ले लिया है कि करीब-करीब सब हमें ज्ञात है और जो ज्ञात नहीं है, वह भी ज्ञात हो जाएगा। जीवन में कुछ भी अज्ञेय, कुछ भी अननोएबल नहीं है; सब जाना जा सकता है। यह सत्य से बिल्कुल ही विपरीत बात है।
जीवन में सब कुछ अज्ञेय है। और जिसे हम जानना समझते हैं, वह भी जानना नहीं है। जीवन में कुछ भी नहीं जाना जा सकता है। एक छोटी पत्ती से लेकर जो कुछ दिखाई पड़ता है, वह सभी बहुत, बहुत अज्ञात, बहुत अज्ञेय, बहुत अबूझ, बहुत रहस्यपूर्ण है। यह रहस्य कभी भी नहीं तोड़ा जा सकता है, जो हम थोड़ा सा जान लेते हैं, वह जानना परिचय है, ज्ञान नहीं; एक्वेंटेंस है। परिचय को हम ज्ञान समझ लेते है! थोड़े दिन कुछ हम जान लेते हैं।
इस सरू के वन में हम बैठे हैं, सागर के तट पर। कल आप आए थे तो इन सरू के वृक्षों में, इस सागर के तट पर थोड़ा सा अनजाना मालूम पड़ा होगा। आज आप परिचित हो गए, कल आप और परिचित हो जाएंगे, परसों और! जाते-जाते यह सरू का वन आपको दिखाई नहीं पड़ेगा, यह सागर का गर्जन आपको सुनाई नहीं पड़ेगा; लगेगा जानते हैं! जो यहां निकट रहते होंगे, उन्हें यहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा।
काश्मीर लोग यात्रा करने जाते हैं। जो वहां रहते हैं, उन्हें वहां कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता! हिमालय की पहाड़ियों को--लोग दूर से पागल की तरह, यात्रा करते हैं। जो वहां रहते हैं, उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता! क्या वे जानते हैं? नहीं, वे परिचित हो गए हैं। निकट रहने से, रोज-रोज देखने से उन्हें यह भ्रम पैदा हो गया है कि हम जानते हैं।
परिचय ज्ञान का भ्रम पैदा कर देता है।
मनुष्य परिचित होता चला जा रहा है जगत से और इसी को वह समझ रहा है कि
हम जान रहे हैं! यह जानने का भ्रम, यह नोइंग एटिट्यूड कि हमें पता है, जीवन के सारे रहस्य को खंडित कर रहा है। साधक को इस जानने के भ्रम को तोड़ देना चाहिए और विस्मय को उपलब्ध कर लेना चाहिए।
क्या आप इन वृक्षों के पास इस भांति बैठ सकते हैं, जैसे आप पहली बार ही
एक अज्ञात लोक में उतर आए हों, जहां कुछ भी परिचित नहीं? क्या आप सागर के गर्जन को ऐसा सुन सकते हैं, जैसा पहली बार, प्रथम बार ही आपने सुना और जाना हो? पृथ्वी पर जो पहला आदमी उतरा होगा, उसने पृथ्वी को जैसा देखा होगा, क्या वैसा आप देख सकते हैं? पहला आदमी चांद पर उतरेगा और जैसा चांद को देखेगा विस्मय-विमुग्ध होकर, अवाक होकर, मौन होकर--सब अपरिचित, सब अनजाना, क्या वैसा आप पृथ्वी पर क्षण भर को खड़े हो सकते हैं? अगर खड़े हो सकते हैं, तो साधना की पहली सीढ़ी पार कर ली गई।

इन तीन दिनों में मैं आपसे यह प्रार्थना करूंगा कि यहां इस भांति खड़े हों, जैसे आपकी नौका टकरा गई हो नारगोल के तट पर और एक अनजान जगह में आप उतर गए हों, जहां कुछ भी परिचित नहीं। सब अपरिचित है--रेत भी, वृक्ष भी, तट भी, आकाश भी। सब अपरिचित है।
और सचाई यही है कि जहां हम जन्म लेते हैं, हम कुछ भी जानते हुए नहीं आते, हम बिल्कुल अनजान पैदा होते हैं, बिल्कुल स्ट्रेंजर, बिल्कुल अजनबी। जन्म एक अजनबी लोक में खड़ा कर देता है। और जब हम मरते हैं, तब भी हम बिना कुछ जाने बिदा हो जाते हैं! आदमी क्या जानकर समाप्त होता है? मरते क्षण भी हमारी चेतना वहीं होती है, जहां जन्म के क्षण में थी। हम कुछ भी नहीं जान पाते हैं और विदा हो जाते हैं!
यह जो बीच में जन्म और मृत्यु के बीच में हमें जानने का भ्रम पैदा हो जाता है, वह परिचय का भ्रम है।
बाप सोचता है, मैं बेटे को जानता हूं; पत्नी सोचती है मैं पति को! मित्र सोचता है, मैं मित्र को जानता हूं! कोई भी किसी को नहीं जानता है। इस अनजानेपन को, इस स्ट्रेंजनेस को, इस अजनबीपन को पकड़ लेना है, पहचान लेना है। इस पर ध्यान को ले जाना है, यह हमारे मेडिटेशन का हिस्सा बन जाए, यह हमारे ध्यान और चिंतन और मनन का केंद्र बन जाए कि हम कुछ भी नहीं जानते। क्या यह बन सकता है?
यह बन सकता है, अगर थोड़ा हम साहस करें और अपने उस अहंकार को छोड़ सकें,
जो जानने ने पैदा कर दिया है। मनुष्य के भीतर गहरी से गहरी ईगो, गहरा से गहरा अहंकार जानने का अहंकार है।
किसी से भी पूछिए--ईश्वर है?
वह कहेगा--हां, ईश्वर है। या कहेगा कि नहीं ईश्वर नहीं है। और दोनों हालतों में वह यह कहेगा कि मैं जानता हूं! शायद ही कोई आदमी खोजे से मिल जाए जो चुप रह जाए और कहे कि मैं नहीं जानता हूं।
लेकिन चाहता हूं मैं कि आप वह आदमी बनें, जो कह सके निर्भयता से, निश्चय से--कि मैं नहीं जानता हूं। पूछें अपने से--हम जानते हैं कुछ? गहराई में अपने से यह प्रश्न उठाएं, जानता हूं मैं कुछ? क्या जानता हूं?
और तो जानना दूर है, स्वयं को भी नहीं जानता हूं, अपने को भी नहीं जानता हूं। नहीं जानता हूं उसे, जो कि मैं हूं! फिर मैं और क्या जान सकूंगा? जो मेरे निकटतम है, जो मेरे भीतर है, वह भी अपरिचित और अनजान, तो जो मेरे बाहर है और मुझसे दूर, वह कैसे परिचित और जाना हुआ हो सकता है? आप अपने को जानते है--शायद न पूछा हो कभी आपने अपने से?
हम कुछ चीजें स्वीकार ही कर लेते हैं-कभी पूछते ही नहीं! हर आदमी यह बात स्वीकार ही कर लेता है कि "मैं जानता हूं अपने को!" और इस भांति चलने और जीने लगता है, जैसे जानता हो! हमने कभी प्रश्न ही नहीं पूछा, और जिसने प्रश्न ही नहीं पूछा, उसकी यात्रा कैसे आगे बढ़ सकती है?
पहला प्रश्न जो प्रत्येक को अपने से पूछ लेना चाहिए, वह यह कि "क्या मैं अपने को जानता हूं?" मैं कौन हूं, मैं क्या हूं, मैं कहां से हूं, मैं कहां के लिए हूं?
लेकिन किसी बात का कोई उत्तर नहीं! न ज्ञात है कि मैं कौन हूं, न ज्ञात
है कि मैं क्या हूं, न ज्ञात है कि मैं कहां से हूं, न ज्ञात है कि मैं कहां के लिए जा रहा हूं। इन चार बुनियादी प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है, लेकिन हम स्वीकार कर लिए हैं कि हम अपने को जानते हैं!
शॉपनहार--एक सुबह, कोई तीन बजे होंगे, एक छोटे से बगीचे में गया हुआ था। रात थी। अभी अंधेरा था। बगीचे का माली हैरान हुआ कि इतनी रात गए कौन आ गया है। उसने अपनी लालटेन उठाई, अपना भाला उठाया और वह गया बगीचे के भीतर। शॉपनहार वहां टहलता है वृक्षों के पास और कुछ अपने से ही बातें कर रहा है! उस माली को शक हुआ कि जरूर कोई पागल घुस आया है, अकेला अपने से बातें
कर रहा है! उसने दूर से ही खड़े होकर आवाज दी और पूछा कि कौन हो, कहां से आए हो, किसलिए आए हो, क्या चाहते हो?
शॉपनहार जोर से हंसने लगा और उसने कहा, तुम ऐसे कठिन प्रश्न पूछते हो, जिनका उत्तर आज तक कोई आदमी नहीं दे पाया। पूछते हो, कौन हो? जिंदगी भर हो गई मुझे पूछते-पूछते, अब तक मुझे उत्तर नहीं मिला कि कौन हूं! पूछते हो

कहां से आए हो? आज तक कोई आदमी नहीं बता सका कि कहां से आया है! मैं भी असमर्थ हूं। पूछते हो, किसलिए आए हो? उसका भी मुझे कोई पता नहीं कि किसलिए आया हूं!
निश्चित ही उस माली ने समझा होगा कि पागल ही है यह आदमी, जिसे इतना भी पता नहीं। लेकिन माली पागल था या वह आदमी, जिसे पता नहीं था। कौन था पागल? अगर आपको पता है या आपको भ्रम है कि आपको पता है तो आप पागल हो सकते हैं। लेकिन अगर आपको पता नहीं है तो यह मनुष्य की स्थिति है, यह ह्यूमन सिचुएशन है कि आदमी को पता नहीं। इसमें पागलपन का कोई सवाल नहीं।
लेकिन कहीं हम पागल न मालूम पड़ने लगें, इसलिए हमने कुछ व्यवस्था कर ली है। कुछ अपने को पहचानने और जानने का आयोजन कर लिया है। हमने कुछ उपाय कर लिए हैं, जिससे हमें ऐसा लगे कि हम अपने को जानते हैं। हमने अपने नाम रख लिए है, अपनी जाति बना ली है, अपना धर्म बना लिया है, अपना देश बना लिया है! हमें इंगित किया जा सके कि कौन है यह आदमी--तो हमारा नाम है, हमारी जाति है, हमारा धर्म है, हमारा देश है; हमारे मां-बाप हैं, उनके नाम हैं; हमारी वंश परंपराएं हैं! और हमने कुछ इंतजाम कर लिया है, जिस भांति पहचाना जा सके कि मैं कौन हूं। और हमारी सारी व्यवस्था झूठी, हमारी सारी व्यवस्था कल्पित और सपने जैसी है। क्या है नाम किसी का? क्या है किसी की जाति? क्या है किसी का धर्म? कौन-सा है देश, किसका?
लेकिन हमने जमीन पर भी झूठी रेखाएं खींच रखी हैं--भारत की और चीन की,
और रूस की और अमरीका की! झूठी रेखाएं, जो जमीन पर कहीं भी नहीं है, लेकिन ताकि हम कह सकें कि मैं यहां से हूं!
और हमने आदमी के आस-पास भी झूठे नाम और लेबल चिपका रखे हैं। कोई राम है, कोई कृष्ण है, कोई कोई है! वे नाम भी बिल्कुल झूठे हैं। आदमी कोई नाम लेकर पैदा नहीं होता है।
और हमने जातियों के नाम भी चिपका रखे हैं! वे नाम भी बिल्कुल झूठे हैं। आदमी किसी जाति में पैदा नहीं होता। सब जातियां आदमी के ऊपर से थोपी जाती हैं।
और हमने मां-बाप के नाम भी अपने साथ जोड़ रखे हैं! न उनका कोई नाम था, न उनके मां-बाप का कोई नाम था, न उनके मां-बाप का कोई नाम था।
लेकिन हमने एक छोटा सा कोना बना लिया है ज्ञान का, और ऐसा भ्रम पैदा कर लिया है कि हम अपने को जानते हैं। इसी भ्रम में हम जीते हैं और नष्ट हो जाते हैं।
साधक को यह भ्रम तोड़ देना चाहिए, यह कोना उजाड़ देना चाहिए। उसे जान लेना चाहिए ठीक-ठीक कि मेरा कोई नाम नहीं, मेरी कोई जाति नहीं। मेरा कोई देश नहीं; मेरा परिचय नहीं, मैं बिल्कुल अज्ञात! जैसे ये हवाओं के झोंके अज्ञात हैं, जैसे ये वृक्ष अज्ञात हैं, जैसे ये आकाश के चांद-तारे अज्ञात हैं, जैसे यह सागर का पानी अनाम और अपरिचित और अज्ञात है, वैसे ही आदमियों के जीवन की लहरें भी अज्ञात हैं, अनजानी, अपरिचित।
लेकिन न केवल आदमी ने ऊपर का परिचय बना रखा है, आदमी ने भीतर का परिचय
भी बना रखा है! किसी से पूछें कि आपके भीतर कौन है? वह कहेगा, मेरे भीतर आत्मा है! आत्मा अमर है! मेरे पिछले जन्म थे! कर्मों के फल हैं! आगे जन्म होंगे! स्वर्ग है, नरक है! वे लोग जो शुद्ध हो जाते हैं, वे मोक्ष चले जाते हैं!
हमने अज्ञात में, अंधेरे में न मालूम क्या-क्या लिख लिया है! यह ज्ञान
भी आदमी का पकड़ा हुआ और कल्पित ज्ञान है। यह ज्ञान भी हमें पता नहीं--कुछ भी हमें पता नहीं है। लेकिन इन शब्दों को हम दोहराए चले जाते हैं। इन शब्दों को हम पकड़ कर बैठ जाते हैं! इन शब्दों पर हम ध्यान करते हैं!
एक संन्यासी कुछ दिन हुए मेरे पास आए। मैंने उनसे पूछा कि क्या ध्यान करते हैं, क्या साधना करते हैं? कहने लगे, बैठ कर एकांत में यही सोचता हूं कि मैं सत्-चित्-आनंद स्वरूप परमात्मा हूं। मैं शुद्ध-बुद्ध आत्मा हूं। मैं अमृत जीवन हूं। मेरी कोई मृत्यु नहीं। मैं शरीर नहीं हूं। मैं मन नहीं हूं। मैं आत्मा हूं। यह हम ध्यान करते हैं, यह हम मेडिटेशन करते हैं! मैंने उनसे कहा, ये बातें आपको पता हैं? ये बातें आपको ज्ञात हैं? यह आपका अनुभव है, यह आपका ज्ञान है कि आप शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं? या कि सुने

हुए शब्द और सीखे हुए शब्द हैं? फिर मैं उनको पूछा, अगर यह आपको ज्ञात ही है कि आप शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं तो रोज-रोज इसे बैठ कर दोहराने की, रिपीट करने की क्या जरूरत है? जो ज्ञात है, उसे कभी कोई नहीं दोहराता।
जो ज्ञात नहीं है, उसे दोहरा-दोहरा कर हम यह भ्रम पैदा करना चाहते हैं
कि वह ज्ञात है!
अगर यह मालूम है कि मैं परमात्मा हूं, अगर यह पता है--अहं ब्रह्मास्मि,
कि मैं ब्रह्म हूं तो इसे रोज-रोज दोहराने की क्या जरूरत है? कोई कभी नहीं दोहराता, जिसे जानता है। जिसे हम नहीं जानते हैं, उसे हम दोहराते हैं। क्योंकि बार-बार दोहरा लेने से यह भ्रम पैदा होना शुरू हो जाता है, हम परिचित हो जाते हैं शब्दों से। निरंतर दोहराए जाने से परिचय पैदा हो जाता है। हम भूल जाते हैं कि पहली बार जब हमने कहा था तो हमें पता नहीं था। पचास बार कहने के बाद ऐसा लगता है कि हमें मालूम है। लेकिन पहली बात ही जब हमें ज्ञात नहीं थी तो पचास बार दोहरा लेने से वह ज्ञात नहीं हो सकती है। रिपीटीशन कहीं भी नहीं ले जाता है सिवाय भ्रम के।
अगर मुझे पहली बार ही पता नहीं था तो मैं हजार बार दोहराऊं, इससे क्या होगा? झूठ हजार बार दोहरा लेने से सच नहीं हो जाता। और अज्ञान हजार बार दोहरा लेने से ज्ञान नहीं बन जाता।
लेकिन हम दोहराते हैं। हम दूसरों को भी जब धोखा देना चाहते हैं तो हम दोहराने का उपाय करते हैं! अपने को भी धोखा देना चाहते हैं तो दोहराने का उपाय करते हैं!
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि ऐसा कोई भी असत्य नहीं है, जिसे बार-बार दोहरा देने से सत्य न बनाया जा सके। ठीक ही लिखा है।
कोई भी असत्य बार-बार दोहरा देने से सत्य प्रतीत होने लगता है।
जितने सत्य हम जानते हैं, वे इसी तरह दोहराए गए असत्य हैं, जिनको दोहरा-दोहरा कर हमने सत्य मान लिया है। हम कुछ भी मान सकते हैं। उसे बार-बार दोहरा लेने से, निरंतर दोहरा लेने से भ्रम पैदा हो जाता है।
हमने शरीर का भी परिचय बना लिया है, हमने भीतर का भी परिचय बना लिया है! न हमें शरीर का कोई पता है, न भीतर का हमें कोई पता है। अगर सत्य की दिशा में कोई भी कदम उठाना है तो प्राथमिक रूप से हमारे यह अज्ञान की स्थिति स्पष्ट हो जानी चाहिए। इस अज्ञान के स्पष्ट बोध से तो यात्रा हो सकती है, क्योंकि यह अज्ञान सत्य है।
यह हमारा न जानना एक तथ्य है, एक फेक्चुअलिटी है। यह मैं आपको सिखा नहीं रहा हूं कि आप नहीं जानते। न जानना हमारी वस्तुस्थिति है। लेकिन दुनिया में निरंतर यह सिखाया जा रहा है कि आप अपने को इस भांति जानें! ये बातें दोहराएं और इनको दोहराते रहें, दोहराते रहें! और दोहराने से आपको ज्ञान पैदा हो जाएगा!
हजारों वर्षों से आदमी को कुछ बातें दोहराने के लिए सिखाई जा रही हैं?
। बैठ कर दोहराओ कि मैं ईश्वर हूं, मैं परमात्मा हूं, मैं आत्मा हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं। एक आदमी जीवन भर दोहराता रहे तो भ्रम पैदा हो जाता है कि "मैं यह हूं"। लेकिन जो बात पहले चरण में असत्य थी, वह अंतिम चरण में सत्य नहीं हो सकती।
मैं आपसे क्या कहना चाहता हूं?
भूलकर भी इस तरह की बातें आप मत दोहराना। इनसे ज्ञान का भ्रम पैदा होता है, ज्ञान पैदा नहीं होता है। पहली मनुष्य की वास्तविक स्थिति क्या है? चित्त की वास्तविक दशा क्या है? स्टेट ऑफ माइंड क्या है हमारा?
सीधी और साफ बात इतनी है कि हम नहीं जानते, हमें कुछ भी पता नहीं। लेकिन आदमी अज्ञान को स्वीकार नहीं करना चाहता। आदमी का गहरे से गहरा जो अस्वीकार है, वह यह कि वह अज्ञान को अस्वीकार करता है। हम लड़ने को तैयार हो जाते हैं, कोई अगर हमसे कह दे कि आप नहीं जानते। कोई किसी बात में कह दे कि आप नहीं जानते, हम लड़ने को तैयार हो जाते हैं! सबसे बड़ी चोट हमारे अहंकार को तब लगती है, जब कोई यह कह देता है कि आप नहीं जानते या कोई कह देता है कि आप गलत जानते हैं।
क्यों लगती है यह चोट?

यह चोट भी शायद इसीलिए लगती है कि वह हमारी सचाई उघाड़ देता है, जो हम छिपाए हुए हैं भीतर, जिसे हमने बहुत से पर्दे ढांक कर भीतर छिपा रखा है। कोई जरा सा पर्दा उघाड़ देता है तो हम मुश्किल में पड़ जाते हैं। हम लड़ने को उतारू हो जाते हैं, हम विवाद करने को तैयार हो जाते हैं।
दुनिया भर के धर्म आज तक कौन सी लड़ाई करते रहे हैं?
एक ही लड़ाई। हर धर्म यह दावा करता रहा है कि हम जानते हैं और अगर किसी
ने कह दिया कि नहीं, तुम नहीं जानते हो और गलत जानते हो तो तलवारें चलती हैं। जैसे कि तलवार कोई प्रमाण हैं जानने का! जैसे कि किसी की हत्या कर देना कोई तर्क है, कोई आर्ग्युमेंट है! जैसे कि मंदिरों और मस्जिदों में आग लगा देना, कोई साक्षी है, कोई विटनेस है, कोई गवाही है!
आदमी का अज्ञान गहरा है, अज्ञान बुनियादी है और उस अज्ञान के ऊपर ज्ञान की सारी बातें उसने चिपका रखी हैं। जरा सा हवा का झोंका और लेबल उड़ने लगता है। तो वह क्रोध से भर जाता है। जरा सा कोई इनकार कर देता है और गुस्सा भर आता है।
लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, अगर आपको जीवन के सत्य की तरफ कोई भी कदम उठाना है तो अपने अज्ञान की बुनियादी स्थिति का पहला स्वीकार--पहली स्वीकृति कि हम नहीं जानते। हम कुछ भी नहीं जानते।
क्यों इस पर मेरा इतना आग्रह है?
क्योंकि तथ्य से सत्य तक जाया जा सकता है। सिद्धांतों से सत्य तक कोई कभी नहीं जाता। जो वास्तविक स्थिति है, जो एक्चुअलिटी है, जो मनुष्य की वास्तविकता है, उससे तो हम कहीं आगे बढ़ सकते हैं।
और भी अगर यह स्मरण आ जाए कि हमारा अज्ञान है, हम नहीं जानते हैं। तो फिर न आप हिंदू रह जाते हैं, न मुसलमान, न जैन, न ईसाई। वे सब ज्ञानियों के दंभ हैं। अज्ञानी का कौन सा धर्म हो सकता है, कौन सी फिलासफी हो सकती है। अज्ञानी का कौन-सा शास्त्र हो सकता है?
ज्ञानियों के शास्त्र हो सकते हैं, सिद्धांत हो सकते हैं, संप्रदाय
हो सकते हैं।
अज्ञानी का तो कुछ भी संप्रदाय नहीं हो सकता, कोई शास्त्र नहीं हो सकता। उसकी कोई गीता नहीं, उसका कोई कुरान नहीं, उसके कोई कृष्ण नहीं, उसके कोई महावीर नहीं। उसका तो एक ही कहना है कि मैं नहीं जानता हूं। इसलिए वह दावेदार नहीं, उसका दावा नहीं, उसका कोई विरोध नहीं, उसका कोई विवाद नहीं। ऐसा निर्विवाद में खड़ा हुआ व्यक्ति और स्मरण रहे, जब तक ज्ञान का दावा है, तब तक विवाद से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता है। कोई कितना ही कहे कि मैं विवाद नहीं करता, अगर उसको यह ख्याल है कि मैं जानता हूं, वह विवाद में है। हर ज्ञानी विवाद में है। विवाद में रहेगा, और विवाद में मरेगा। निर्विवाद वही हो सकता है, जिसे ज्ञान का भ्रम न हो। जैसे ही यह भ्रम टूट जाता है कि मैं जानता हूं; एक ह्युमिलिटी, एक विनम्रता पैदा होनी शुरू होती है, जो अभूतपूर्व है, जिसका आपको कोई परिचय नहीं। आप बिल्कुल एक छोटे बच्चे की भांति हो जाते हैं।
बूढ़े और बच्चे में क्या फर्क है? एक ही फर्क है, बच्चे नहीं जानते हैं; बूढ़े जानते हैं। लेकिन बूढ़ों का जानना झूठ है; और बच्चों का न जानना सच है। साधक फिर से बचपन को उपलब्ध हो जाता है। पोंछ देता है स्मृति को, फिर वहां खड़ा हो जाता है, जहां बच्चे खड़े हैं। छोटे-छोटे बच्चों को साधारण से चमकदार पत्थर ऐसे विस्मय से भर देते हैं, एक छोटे से पक्षी का गीत, किन्हीं ऐसे लोकों में ले जाता है! एक छोटी सी हिलती हुई पत्ती उन्हें किसी दूसरे जीवन में, किसी दूसरी अवस्था में प्रविष्ट करा देती है! बच्चों के लिए जगत बहुत रंग से भरा हुआ, बहुत गीत से, बहुत ध्वनि से भरा हुआ मालूम पड़ता है। यह धूप बहुत स्वर्णिम मालूम पड़ती है। यह चांदनी बहुत चांदी जैसी मालूम पड़ती है। यह सब कुछ, जो हमें अति साधारण दिखाई पड़ता है, अति असाधारण प्रतीत होता है। क्यों?
भीतर विस्मय की आंख है, जानने वाले का दंभ नहीं। जानने का दंभ ही मनुष्य के आस-पास दीवाल खड़ी कर देता है, खोल खड़ी कर देता है, लोहे की मजबूत दीवाल खड़ी कर देता है। आदमी उसके भीतर बंद हो जाता है। फिर जगत से उसके संबंध टूट जाते हैं। जीवन से उसका लेन-देन बंद हो जाता है। संवाद बंद हो

जाता है। साधक को यह संवाद वापस उपलब्ध कर लेना है। जीवन से कम्युनिकेशन चाहिए। और जीवन से संवाद तभी हो सकता है, जब यह जानने की खोल टूट जाए।
मैं तो मित्रों को कहता हूं कि मैं अज्ञान सिखाता हूं। ज्ञान बहुत सिखाया जा चुका। ज्ञान मनुष्य को कहीं भी नहीं ले गया, सिवाय उपद्रवों के।
ज्ञान की शिक्षा मनुष्य को बहुत दी जा चुकी। और मनुष्य उस शिक्षा से पतित हुआ और कहीं भी नहीं पहुंचा। परमात्मा और मनुष्य के बीच बाधाएं खड़ी हुईं।
परमात्मा और मनुष्य के बीच सीढ़ियां नहीं बन सका ज्ञान।
ज्ञानी शायद ही कभी जीवन को जानने में समर्थ हो पाया है। नहीं जान सकते हैं। क्योंकि जानने का ख्याल इतने अहंकार से भर देता है, सारी विनम्रता नष्ट हो जाती है। हृदय कठोर और सख्त हो जाता है।
ज्ञानियों से ज्यादा कठोर आदमी खोजने कठिन हैं।
ज्ञानियों से ज्यादा कठोर आदमी मिल ही नहीं सकते। ज्ञानियों ने इतनी हत्याएं कीं और इतनी हत्याएं करवाईं! ज्ञानी अति कठोर हैं। ज्ञान कठोर करता है।
एक घटना मुझे बहुत प्रीतिकर है। एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ है। और उस मेले के पास ही एक कुएं में एक आदमी गिर पड़ा और वह चिल्ला रहा है--कि मुझे निकाल लो, मुझे बाहर निकाल दो। मैं डूब रहा हूं, मैं डूबा जा रहा हूं।
वह किसी तरह ईंटों को पकड़े हुए है, किसी तरह सम्हले हुए है। कुआं गहरा है, और वह आदमी तैरना नहीं जानता। लेकिन मेले में बहुत शोरगुल है, किसको सुनाई पड़े। लेकिन एक बौद्ध भिक्षु उस कुएं के पास से निकला है, पानी पीने को झुका है। नीचे से आवाज आ रही है। उसके झुक कर नीचे देखा। वह आदमी चिल्लाने लगा, कि भिक्षुजी मुझे बाहर निकाल लें। मैं मरा जा रहा हूं। कोई उपाय करें। अब मेरे हाथ भी छूटे जा रहे हैं।
उस भिक्षु ने कहाः क्यों व्यर्थ परेशान हो रहे हो निकलने के लिए। जीवन एक दुख है। भगवान ने कहा है, जीवन दुख है। बुद्ध ने कहा है, जीवन दुख है। जीवन तो एक पीड़ा है। निकल कर भी क्या करोगे? सब तरफ दुख ही दुख है। फिर भगवान ने यह भी कहा है कि जीवन में जो भी होता है, वह पिछले जन्मों के कर्म-फल के कारण होता है। तुमने किसी को किसी जन्म में गिराया होगा कुएं में। इसलिए तुम भी गिरे हो। अपना फल भोगना ही पड़ता है। फल को भोग लो तो कर्म के जाल से मुक्त हो जाओगे। अब व्यर्थ निकलने की कोशिश मत करो। वह भिक्षु तो पानी पीकर आगे बढ़ गया!
उस भिक्षु ने गलत बातें नहीं कहीं। जो शास्त्र में लिखा है, वही कहा।
वह जानता था। वह सामने मरता हुआ आदमी उसे दिखाई नहीं पड़ा, क्योंकि बीच में उसके जाने हुए शास्त्र आ गए! वह आदमी डूब रहा है, वह उसे दिखाई नहीं पड़ रहा है। उसे कर्म का सिद्धांत दिखाई पड़ रहा है! उसे जीवन की असारता दिखाई पड़ रही है! वह उस आदमी को उपदेश देकर आगे बढ़ गया! उपदेशक से ज्यादा कठोर कोई भी नहीं होता है।
वह आगे जा भी नहीं पाया है कि पीछे से एक कनफ्यूशियन मांक, एक कनफ्यूशियस को मानने वाला संन्यासी आ गया। उसने भी आवाज सुनी। उसने भी झांक कर देखा है।
उसने कहाः "मेरे मित्र, कनफ्यूशियस ने अपनी किताब में लिखा हुआ है कि
हर कुएं के ऊपर घाट होना चाहिए, पाट होना चाहिए; दीवाल होनी चाहिए, ताकि कोई गिर न सके। इस कुएं पर दीवाल नहीं, इसलिए तुम गिर गए। हम तो कितने दिन से समझाते फिरते हैं गांव-गांव कि जो कनफ्यूशियस ने कहा है, वही होना चाहिए। तुम घबड़ाओ मत, मैं जाकर आंदोलन करूंगा। मैं लोगों को समझाऊंगा। हम राजा के पास जाएंगे। हम कहेंगे कि कनफ्यूशियस ने कहा है कि हर कुएं पर दीवाल होनी चाहिए, ताकि कोई गिर न सके। तुम्हारे राज्य में दीवालें नहीं हैं, लोग गिर रहे हैं।"
उसने कहा कि "वह सब ठीक है। लेकिन तब तक मैं मर जाऊंगा। पहले मुझे निकाल लो।"
उस आदमी ने कहाः "तुम्हारा सवाल नहीं है। यह तो जनता-जनार्दन का सवाल है। एक आदमी के मरने-जीने से कोई फर्क नहीं पड़ता। सबके लिए सवाल है। तुम अपने को धन्य समझो कि तुमने एक आंदोलन की शुरुआत करवा दी! तुम शहीद हो!"

दुनिया के नेता लोगों को ऐसे ही मूर्ख बनाते हैं कि तुम शहीद हो, तुम
मर जाओ! इससे बड़ा आंदोलन आएगा--समाजवाद आएगा, साम्यवाद आएगा! दुनिया में लोकतंत्र आएगा। तुम मरो।
एक-एक आदमी की कोई कीमत नहीं है। कीमत तो आदमियत की है और आदमियत कहीं
भी नहीं सिवाय शब्दों के! जहां भी मिलता है, आदमी मिलता है। आदमियत कहीं नहीं मिलती, ह्युमिनिटि जैसी चीज कहीं भी नहीं है सिवाय शब्द के। शास्त्रों में लिखी है मनुष्यता। खोजने से हमेशा मनुष्य मिलता है। लेकिन वे शास्त्रों को मानने वाले कहते हैं कि मनुष्यता बचनी चाहिए! मनुष्य के बलिदान की कोई फिक्र नहीं! एक-एक मनुष्य का बलिदान हो जाए, लेकिन मनुष्यता बचनी चाहिए!
वह आदमी डूबता रहा, वह आदमी चिल्लाता रहा और वह कनफ्यूशियस को मानने वाला भिक्षु जाकर मंच पर खड़ा हो गया। उसने मेले में हजारों लोग इकट्ठे कर लिए और उसने कहा कि देखो, जब तक कुओं पर पाट नहीं बनता, तब तक मनुष्य-जाति को बहुत दुख झेलने पड़ेंगे। हर कुएं पर पाट होना चाहिए। अच्छे राज्य का यह लक्षण है। कनफ्यूशियस ने किताब में लिखा हुआ है। वह अपनी किताब खोल कर लोगों को दिखा रहा है!
वह आदमी चिल्ला ही रहा है। लेकिन उस मेले में कौन सुने? एक ईसाई पादरी वहां से गुजरा है। नीचे से आवाज उसने सुनी है, उसने जल्दी से अपने कपड़े उतारे! अपनी झोले में से रस्सी निकाली! वह अपने झोले में रस्सी रखे हुए है! उसने रस्सी नीचे फेंकी, वह कूदा कुएं में, उस आदमी को निकाल कर बाहर लाया। उस आदमी ने कहाः तुम ही एक आदमी मुझे दिखाई पड़े। एक बौद्ध भिक्षु निकल गया उपदेश देता हुआ, एक कनफ्यूशियस को मानने वाला भिक्षु निकल गया! आंदोलन चलाने चला गया है! वह देखो मंच पर खड़ा हुआ, आंदोलन चला रहा है! तुम्हारी बड़ी कृपा है, तुमने बहुत अच्छा किया।
वह ईसाई मिशनरी हंसने लगा। उसने कहाः कृपा मेरी तुम पर नहीं, तुम्हारी मुझ पर है। तुम कुएं में न गिरते तो मैं पुण्य से वंचित रह जाता। जीसस क्राइस्ट ने कहा है पता नहीं? सर्विस-सेवा ही परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग है, मैं परमात्मा को खोज रहा हूं। मैं इसी तलाश में रहता हूं कि कहीं कोई कुएं में गिर पड़े तो मैं कूद जाऊं। कहीं कोई बीमार हो जाए तो मैं सेवा करूं, कहीं किसी की आंखें फूट जाएं तो मैं दवा ले आऊं, कहीं कोई कोढ़ी हो जाएं तो मैं इलाज करूं। मैं तो इसी कोशिश में घूमता-फिरता हूं, इसलिए रस्सी हमेशा अपने पास रखता हूं कि कहीं कोई कुएं में गिर जाए! तुमने मुझ पर कृपा की है, क्योंकि बिना सेवा के मोक्ष पाने का कोई उपाय नहीं है। हमेशा ऐसी ही कृपा बनाए रखना, ताकि हम मोक्ष जा सकें। हमारी किताब में लिखा हुआ है।
उस आदमी ने सोचा होगा कि शायद इसने मुझ पर दया की है तो वह गलती में था। इस आदमी से किसी को भी मतलब नहीं है! यह आदमी किसी को दिखाई नहीं पड़ता! सबकी अपनी किताबें हैं, अपने सिद्धांत हैं। सबका अपना ज्ञान है।
मनुष्य और मनुष्य के बीच ज्ञान की दीवालें हैं! मनुष्य और वृक्षों के बीच ज्ञान की दीवालें हैं! मनुष्य और समुद्रों के बीच ज्ञान की दीवालें हैं! मनुष्य और परमात्मा के बीच ज्ञान की दीवालें हैं!
साधक को ज्ञान की दीवाल बड़ी बेरहमी से तोड़ देनी चाहिए, गिरा देनी चाहिए। एक-एक ईंट गिरा देनी चाहिए जानने की और ऐसे खड़े हो जाना चाहिए, जैसे मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। तो तो जीवन से संबंध हो सकता है, अन्यथा नहीं। तो तो हम जुड़ सकते हैं, तो तो इसी क्षण संवाद हो सकता है। इसी क्षण संबंध हो सकता है--इसी क्षण। कौन रोकता है फिर, फिर कौन बाधा देने को है?
कबीर का एक लड़का था--कमाल। एक सुबह कबीर ने कहा कि कमाल, जा जंगल से थोड़ी घास काट ला।
कमाल जंगल गया। सुबह गया था, दोपहर हो आई। कबीर रास्ता देख रहा है, रास्ता देख रहा है। फिर सांझ होने लगी। फिर उसने कहा कि कमाल क्या करने लगा है! घास काटने भेजा था, जरूरत थी, गाय को खिलानी थी।
वह कहां है? फिर कबीर खोजते हुए जंगल में गया। वहां कमाल गले-गले घास
के बीच में खड़ा है! हवाओं के झोंके घास को हिला रहे हैं। कमाल भी उसके साथ हिल रहा है! कबीर ने जाकर उसे पकड़ा और कहाः पागल, यह क्या कर रहा है!

उसने आंख खोली। उसकी आंख बंद थी। उसने आंख खोली, उसने कहा कि मैं काटने में असमर्थ हो गया। मैं जब आया यहां, इतने आनंद में घास झूमती थी। सूरज की ऐसी स्वर्णिम वर्षा हो रही थी, हवाएं इतनी ताजी थीं और घास इतने आनंद में झूमती थी कि मैं भी झूमने लगा। मेरा भी संबंध हो गया घास से। तुम आए और तुमने मुझे हिलाया तो मुझे पता चला कि मैं कमाल हूं। मैं तो सोच रहा था कि मैं भी घास का एक हिस्सा हूं, मैं भी घास हूं! फिर कौन किसको काटता-- मैं तो घास हो गया! कबीर की समझ में शायद आया या नहीं आया, लेकिन कमाल ने कहा, मैं तो घास हो गया!
जब कोई व्यक्ति सागर के पास ऐसे बैठ जाए कि उसका कोई ज्ञान नहीं है तो
वह थोड़ी देर में पाएगा कि वह सागर हो गया है। संवाद शुरू हो जाएगा। वह वृक्ष के पास बैठ जाए, उसका कोई ज्ञान न हो, कोई दंभ न हो, कोई अहंकार न हो, कोई ईगो न हो, वह थोड़ी देर में पाएगा वह वृक्ष हो गया है। वह फूल के पास बैठ जाए, वह थोड़ी देर में पाएगा वह फूल हो गया है। एक संबंध है, जो ज्ञान तोड़ता है, जो ज्ञान के कारण नहीं बन पाता। वह संबंध बन जाए तो जीवन चारों तरफ से वह खबर भेजने लगता है, जिसे हम प्रभु की खबर कहें।
पक्षियों के गीत से वह ध्वनि आने लगती है, जो वेदों से नहीं आती।
वृक्षों की कंपती टहनियों से वह आवाज आने लगती है, जो कुरान में नहीं है, जो महावीर नहीं कह सकते, जो बुद्ध नहीं कह सकते। जो कोई वाणी नहीं कह सकती।
वह मौन में प्रकट होनी शुरू हो जाती है।
लेकिन उसके लिए पात्रता चाहिए। अज्ञानी का सरल, विनम्र हृदय चाहिए।
ज्ञानी का दंभ और कठोर मजबूत मन नहीं।
इसलिए पहली सीढ़ी पर आपसे यह कहना चाहता हूं, अज्ञानी हो जाएं।
अज्ञानी हैं, इसे जान लें, इसे पहचान लें।
और यह बड़े रहस्य की बात है कि जो अपने अज्ञान को पहचानता है, उसने ज्ञान की तरफ पहला कदम उठा लिया। वे लोग जो जान लेते हैं कि नहीं जानते हैं, जानने की तरफ उनकी गति शुरू हो गई। वे किसी दिन जान भी सकेंगे, किसी दिन जानना भी हो जाएगा। लेकिन विनम्रता चाहिए जानने के लिए और विनम्रता अज्ञान के अतिरिक्त कहीं भी नहीं है, कहीं भी नहीं हो सकती।
साधक के लिए पहला सूत्र हैः अज्ञान का बोध। अज्ञान का बोध! इस बोध के लिए न तो शास्त्रों को पढ़ने की जरूरत है, क्योंकि जो शास्त्र को पढ़ लेते हैं, उन्हें यह बोध पाने में सिवाय कठिनाई के और कुछ भी नहीं होता। न इस बोध को प्राप्त करने के लिए किन्हीं गुरुओं के पास जाने की कोई जरूरत है, क्योंकि गुरुओं के पास ज्ञान मिल सकता है। अज्ञान का बोध कैसे मिलेगा? न इस अज्ञान के बोध के लिए सत्संगों की जरूरत है, क्योंकि वहां सब शब्द और सिद्धांत मिल सकते हैं।
यह बोध कैसे मिलेगा?
इस बोध के लिए तो एकांत में, अकेले में, अपनी वस्तुस्थिति समझने की जरूरत है। "क्या मैं जानता हूं?" यह अपने से बार-बार पूछ लेने की जरूरत है-- क्या मैं जानता हूं? भीतर से उत्तर आएगा कि नहीं, नहीं जानते। हो सकता है, जाने हुए सिद्धांत बीच में खड़े हो जाएं और कहें कि हां, जानते हो। तो थोड़ा उन सिद्धांतों को परख लेना--ये मैंने सुन कर सीखे हैं, पढ़ कर सीखे हैं या मैं जानता हूं? ये मैंने शास्त्र से सीखे हैं। ये शब्द हैं, सिद्धांत हैं या मेरी अनुभूतियां हैं? इतना उनसे पूछ लेना तो वे तत्क्षण गिर जाएंगे, वे खड़े नहीं रह सकेंगे।
ज्ञान एकदम बेबुनियाद है।
एक जरा से धक्के की जरूरत है कि जैसे ताश के पत्तों का महल गिर जाता है, ऐसे ही गिर जाएगा।
ज्ञान बिल्कुल कागज की नाव है। छोड़ो इसे पानी में और डूब जाएगी।
ज्ञान हमारा है ही नहीं, सिर्फ हम बनाए हुए बैठे हैं और माने हुए बैठे हैं कि है। जब तक हम माने हुए बैठे हैं, तब तक वह है। जिस दिन हम आंख खोल कर पहचानेंगे, उसी दिन वह नहीं हो जाता है। और जिस दिन ज्ञान "नहीं" हो जाता है, उस दिन फिर जीवन में प्रवेश का द्वार खुलता है।
तो आज की सुबह की चर्चा में एक ही बात आपसे कहना चाहता हूं, अज्ञान को उपलब्ध कर लें।

अज्ञान का भाव बड़ी धन्यता है, बड़ी कृतार्थता है।
छोड़ दें कचरे को जो जान लिया। अज्ञान की अपनी गहराई है, जो किसी ज्ञान में नहीं। क्योंकि ज्ञान कितना भी होगा, सीमित होगा। अज्ञान असीम हो सकता है, अज्ञान असीम है। ज्ञान कितना ही होगा, और आगे बढ़ाया जा सकता है। अज्ञान अनंत है। उसमें और कुछ नहीं जोड़ा जा सकता। आप जानते हैं तो कुछ
और जान सकते हैं, कुछ और जान सकते हैं, कुछ और जान सकते हैं। आप नहीं जानते हैं तो नहीं जानते हैं। अब उसमें कुछ जोड़ने-घटाने का उपाय नहीं। ऐसा जो अज्ञान का बोध है, उसे अगस्तीन ने एक शब्द दिया था। उसने कहा था, डिवाइन इग्नोरेंस--दिव्य अज्ञान। सच में ही अज्ञान की बड़ी दिव्यता है, क्योंकि अज्ञान में अहंकार के खड़े होने का कोई उपाय नहीं और जहां अहंकार नहीं है, वहीं दिव्यता शुरू हो जाती है। और जहां अहंकार के खड़े होने का उपाय है, वहीं दिव्यता खंडित हो जाती है।
यह तो सुबह की थोड़ी सी बात मैंने आपसे कही। इसे सोचें, परखें, पहचानें
और अगर दिखाई पड़ता तो गिरा दें; ज्ञान के मकान को गिरा दें, ताकि अज्ञान का मंदिर खड़ा हो सके।
ज्ञान के सब मकान हैं, अज्ञान का अपना मंदिर है।
इस बात के बाद सुबह के ध्यान के लिए हम बैठेंगे। तो मैं सुबह के ध्यान
के संबंध में दो-तीन बात आपको कह दूं, फिर हम ध्यान के प्रयोग के लिए बैठें।
ध्यान तो बड़ी सरल सी बात है। जो भी महत्वपूर्ण है, वह सरल ही हो सकता है। कठिनाई हमेशा असत्य के साथ होती है, सत्य के साथ कोई कठिनाई नहीं। ध्यान बड़ी सरल सी बात है, एकदम सरल सी बात है। कुछ भी करना नहीं है, थोड़ी देर को न-करने की अवस्था में अपने को छोड़ देना है। न-करने की अवस्था में, स्टेट ऑफ नॉट डूइंग। कुछ भी नहीं करना है, थोड़ी देर को छोड़ देना है। यह तो इतना अच्छा अवसर है यहां। यह इतनी सुंदर जगह है कि यहां न-करने में छोड़ना एकदम आसान है।
न-करने के क्या सूत्र होंगे?
न-करने का पहला सूत्र तो यह है कि मन में करने का कोई भाव न हो। हम ध्यान करने बैठते हैं तो एक भाव होता है कि मैं ध्यान कर रहा हूं, पूजा कर रहा हूं, प्रार्थना कर रहा हूं, मैं कुछ कर रहा हूं। करने का भाव तनाव पैदा करता है, टेंशन पैदा करता है। जहां करने का भाव आया, तनाव आया। करने के भाव के पीछे अशांति आएगी ही। न-करने के भाव के पीछे शांति आ सकती है, विश्राम आ सकता है।
तो पहली बात, अभी जब हम ध्यान के लिए बैठेंगे, हमारी सारी भाषा करने की भाषा है। ध्यान करने बैठेंगे, ऐसा कहेंगे गलत है कहना, क्योंकि ध्यान में करने जैसी कोई संभावना नहीं है। लेकिन हमारी सारी भाषा, मनुष्य की सारी भाषा करने की भाषा है, न-करने की हमारे पास कोई भाषा नहीं।
जापान में कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले एक बहुत बड़ी मोनेस्ट्री थी, एक बड़ा आश्रम था। वहां कोई पांच सौ भिक्षु साधना करते। सम्राट उत्सुक हो गया उस आश्रम को देखने और गया। दूर-दूर जंगल में फैला हुआ वह आश्रम था, दूर-दूर फैली हुई कुटियां थीं। एक-एक कुटी को दिखाने लगा भिक्षु, जो प्रधान था और बताने लगा, इस कुटी में हमारे भिक्षु भोजन बनाते हैं, इस कुटी में हमारे भिक्षु अध्ययन करते हैं, इस कुटी में गीत गाते हैं; यहां यह करते हैं, वहां वह करते हैं; वहां स्नान करते हैं।
बीच में बड़ा भवन है आश्रम का, वह भिक्षु उस भवन के बाबत कुछ भी नहीं कहता है! राजा बार-बार पूछने लगा, ठीक है, ठीक है, लेकिन इस बड़े भवन में क्या करते हैं? यह बात सुनते ही वह भिक्षु चुप हो जाता, जैसे बहरा हो गया हो, जैसे उसे सुनाई नहीं पड़ता हो! फिर दूसरी कुटियों के बाबत बताने लगता है। फिर पूरा आश्रम घूम लिया गया। उस बड़े भवन के आस-पास चक्कर लग गया, लेकिन उस बड़े भवन के संबंध में एक शब्द नहीं! फिर वे द्वार पर आ गए और राजा विदा होने लगा और राजा ने कहा, मैं समझता हूं, या तो मैं पागल हूं या तुम। जो भवन मैं देखने आया था उसके संबंध में तुमने एक शब्द भी नहीं कहा! मैंने बार-बार पूछा, तुम बहरे हो जाते हो क्या? इस बड़े भवन में क्या करते हो?

वह भिक्षु कहने लगा, बड़ी मुश्किल में डाल देते हैं आप। आप बार-बार पूछते हैं कि इस बड़े भवन में क्या करते हो। तो मैं समझ गया कि आप करने की भाषा ही समझ सकते हैं; इसलिए मैंने बताया कि यहां हम स्नान करते हैं, यहां हम भोजन बनाते हैं, यहां हम भोजन करते हैं, यहां हम किताब पढ़ते हैं।
तो मैंने करने की भाषा में बताया, मैंने एक्शन की भाषा में बताया। अब
रह गया बीच का भवन। बड़ी मुश्किल है। वहां हम कुछ भी नहीं करते, वहां तो जब कोई भिक्षु कुछ भी नहीं करना चाहता तो चला जाता है। वह हमारे ध्यान का भवन है। वह मेडिटेशन हॉल है। और आप पूछते हैं, वहां क्या करते हो? तो आप मुझे मुश्किल में डालते हैं। अगर मैं कहूं कि हम वहां ध्यान करते हैं तो गलती होगी, क्योंकि ध्यान का करने से कोई संबंध नहीं है। वहां हम कुछ भी नहीं करते।
यह जो ध्यान की बात मैं कर रहा हूं, यह कुछ भी न-करने की बात है।
आपने राम राम जपा होगा, उसको ध्यान कहा होगा। आपने माला फेरी होगी, उसको ध्यान कहा होगा। आपने गायत्री पढ़ी होगी, उसको ध्यान कहा होगा। आपने नमोकार जपा होगा, उसको ध्यान कहा होगा। वह कोई भी ध्यान नहीं है। जब तक आप कुछ कर रहे हैं, तब तक आप ध्यान में नहीं जा सकते, चाहे माला फेरते हों, चाहे राम राम जपते हों, चाहे गायत्री, चाहे नमोकार, चाहे कुछ और। जब तक आप कुछ कर रहे हैं, तब तक आप ध्यान के बाहर हैं। जब आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं, सब मौन, सब शांत हो गया, सब शिथिल हो गया, करने का सारा यंत्र चुप हो गया, तब आप ध्यान में प्रविष्ट होते हैं।
ध्यान एक अक्रिया है।
ध्यान एक अक्रिया है तो यहां हम ध्यान में अभी जाएंगे तो कैसे जाएंगे? अक्रिया में कैसे जाएंगे?
अक्रिया में जाने का पहला सूत्र तो यह जान लेना है कि मैं कुछ भी नहीं
कर रहा हूं। भाव में यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि मैं कुछ कर नहीं रहा हूं, मैं न-करने में डूबने वाला हूं। भाव के तल पर यह बोध कि मैं न-करने में बैठ रहा हूं--मैं चुपचाप, सिर्फ शिथिल होकर बैठ जाऊंगा, कुछ भी नहीं करूंगा। पहली बात।
दूसरी बात, आप शिथिल होकर बैठ जाएंगे तो भी हवाएं तो बहती रहेंगी, हवाएं तो शिथिल नहीं हो जाएंगी। पक्षी तो बोलते रहेंगे। वह कौआ बोल रहा है, वह आवाज देता रहेगा। सागर गर्जन करता रहेगा, वृक्षों के पत्ते हिलेंगे और आवाज होती रहेगी। यह सब तो होता रहेगा। आप निष्क्रिय हो जाएंगे, लेकिन यह सारा जगत तो अपनी पूरी क्रिया में गतिमान होगा। इस सारी क्रिया के प्रति आप क्या करेंगे?
इस सारी क्रिया के प्रति आप सिर्फ जागरूक बने रहना। होश से भरे रहना, अवेयर बने रहना। यह कौआ बोले तो यह आपको सुनाई पड़ता रहे। ये सागर गर्जन करे तो आपको सुनाई पड़ता रहे। ये हवाएं आएं और वृक्षों को हिलाएं तो आपको सुनाई पड़ता रहे। यह जो चारों तरफ जो कुछ भी हो रहा है, वह आपके बोध में, आपके जागरण में, आपको अनुभव होता रहे। बस आप कुछ मत करना, सिर्फ जागे रहना। सिर्फ सुनते रहना।
और स्मरण रहे, जागना कोई क्रिया नहीं है। जब आप किसी क्रिया में होते हैं, तब भीतर आपका जागरण सो जाता है। जब आप बिल्कुल अक्रिया में होते हैं, तब जागरण पूरा प्रकट हो जाता है।
जागरण कोई क्रिया नहीं है, मनुष्य का स्वभाव है। कोई एक्ट नहीं है, कोई कर्म नहीं है, मनुष्य की चित्त दशा है। मनुष्य की चेतना है।
तो सिर्फ सचेत, होश से भरे हुए, कांशस, चुपचाप, मौन से इन वृक्षों के पास बैठे रहना है। श्वास चलती रहेगी तो श्वास को चुपचाप अनुभव करते रहें। और सुनते रहें--चारों तरफ जो भी सुनाई पड़ रहा है, उसे सुनते रहें। सुनते ही सुनते आप हैरान हो जाएंगे। एक-दो क्षण भी मौन से सुनते ही भीतर गहरी शांति उतरनी शुरू हो जाएगी। थोड़ी देर में सब विलीन हो जाएगा, एक सन्नाटा भर भीतर रह जाएगा। उस सन्नाटे में कोई पक्षी बोलेगा तो उसकी गूंज सुनाई पड़ेगी। गूंज विलीन हो जाएगी, सन्नाटा और भी ज्यादा गहरा हो जाएगा। कोई चीज बाधा नहीं डालेगी। हर चीज जो चारों तरफ हो रही है, सहयोगी बन जाएगी, मित्र बन जाएगी।

एक बार आप शिथिल और मौन होकर रह जाएं, विचार अपने आप शांत हो जाएंगे, विलीन हो जाएंगे। उन्हें शांत करना नहीं पड़ता है, उन्हें हटाना भी नहीं पड़ता है। जो मौन में बैठ कर चारों तरफ के जगत के प्रति जागरूक हो जाता है, धीरे-धीरे उसके विचार अपने आप समाप्त हो जाते हैं। यह अभी और यहीं हो सकेगा। इसके पहले कि हम बैठें... थोड़े दूर-दूर हम बैठ जाएंगे, ताकि कोई किसी को छूता हुआ न हो। और यहां तो इतनी फैली जगह है, इतने वृक्ष हैं, अपना-अपना वृक्ष चुन लें। थोड़े फासले पर हो जाएं, ताकि आप बिल्कुल अकेले में निष्क्रिय हो सकें। थोड़े हट जाएं, कोई किसी को छूता हुआ न हो।
और यहां तो इतनी फैली जगह है। इतने वृक्ष हैं। अपना अपना वृक्ष चुन लें। थोड़े फासले पर हो जाएं। ताकि आप बिल्कुल अकेले में निष्क्रिय हो सकें। थोड़े हट जाएं। कोई किसी को छूता हुआ न हो... थोड़ा... एक दूसरे का साथ थोड़ा छोड़ो... हां आप आगे हट आओ। आप हट सकती हो।... थोड़े फासले पर हो जाएं, थोड़े एक दूसरे से फासले पर हो जाएं।... कोई बात न करें क्योंकि बात की कोई जरूरत नहीं है। चुपचाप हट जाएं अलग। अलग होने का मजा क्यों छोड़ते हैं? चुपचाप हट जाएं। बिल्कुल आराम से बैठ जाएं। शरीर को कोई तनाव नहीं देना है। जैसा आपको सुढ़द मालूम पड़े वैसे बैठ जाएं। न किसी आसन की जरूरत है न शरीर पर कोई स्ट्रेन कोई तनाव डालने की। बिल्कुल आराम से बैठ जाएं।
और बीच में भी आपको लगे कि पैर भारी हो गया है तो चुपचाप बदल लें। आपको लगे कि हाथ थक गया है तो बदल लें। आपको जैसा लगे बीच में घबराएं ना कि शरीर को हिलाएंगे तो ध्यान नष्ट हो जाएगा। ध्यान का शरीर के हिलने से कोई संबंध नहीं है। शरीर हिलता रहे और मन भीतर शांत और निष्क्रिय बना रहे तो कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन आपका पैर भारी हो गया अब आप जबरदस्ती उसको रोके हुए बैठे हैं तो आपका सारा चित्त पैर पर ही पकड़ जाएगा और कहीं भी नहीं जाएगा। बिल्कुल ढीला छोड़ दें। आंख अहिस्ता से बंद कर लें। इतने धीरे से आंख बंद करें कि आंख पर भी तनाव न मालूम पड़े। पलक को छोड़ दें, अपने आप पलक बंद हो जाएगा। धीरे से छोड़ दें। आंख धीरे से बंद कर लें। अब सबसे पहले मस्तिष्क को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। कोई तनाव नहीं, बिल्कुल ढीला छोड़ दें। हम कोई काम नहीं कर रहे हैं, विश्राम में जा रहे हैं। मस्तिष्क पर कोई भार न रखें, बिल्कुल ढीला छोड़ दें--जैसे बंधी हुई मुठ्ठी कोई खोल दे। ऐसा मन के सारे स्नायुओं को ढीला छोड़ दें। सिर पर कोई भार न रह जाए।
ठीक है अब मौन... कुछ भी नहीं कर रहे हैं। इस भाव में प्रविष्ट हो जाएं। मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। फिर चुपचाप सुनते रहें हवाओं को, पक्षिओं को, मौन सुनते रहें। बस सुनते रह जाएं। जागे रह जाएं, सुनें... सुनते रहें पक्षियों की वाणी को, सागर के गर्जन को। हवाओं की आवाज को। सुनते रहें... कोई तनाव नहीं... बिल्कुल शांति से सुनते रहें। सुनते सुनते ही मन मौन हो जाएगा। सुनते ही सुनते मन शांत हो जाएगा। एक गहरा सन्नाटा भीतर पैदा हो जाएगा। आप भूल जाओगे कि आप हो। हवाएं रह जाएंगी। सागर रह जाएगा, पक्षी रह जाएंगे आप नहीं। सुनें... दस मिनट के लिए बिल्कुल सुनते रह जाएं... शांत मौन...
मौन सुनते रह जाएं... बात न करें... लिटा दें इनको लिटा दें... मौन सुनते रहें... शांत सुनते रहें।
धीरे-धीरे मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। मन बिल्कुल मौन हो जाएगा। हवाएं
रह गईं, पक्षी रह गए। आप मिट गए... बिल्कुल मिट जाएं। आप हैं ही नहीं। देखें चुपचाप... आप मिट गए... मन शांत होता जा रहा है...
मन शांत होता जा रहा है। मन बिल्कुल शांत होता जा रहा है... मन शांत होता जा रहा है... मन शांत होता जा रहा है। मन बिल्कुल शांत हो गया... मन शांत हो गया है। हवाएं रह गईं... पक्षियों की आवाज रह गई... आप मिट गए।
बिल्कुल मिट जाएं... सबकुछ शांत हो गया है... मन शांत हो गया है... मन बिल्कुल शांत हो गया। मन शांत हो गया है... अब धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें... धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। फिर बिल्कुल आहिस्ता से आंख खोलें... जैसे भीतर सब शांत है वैसे ही बाहर भी सब शांत दिखाई पड़ेगा... धीरे- धीरे आंख खोलें... धीरे-धीरे आंख खोलें...
एक छोटी-सी बात अंत में आपसे कह दूं, फिर सुबह की बैठक समाप्त होगी। वह--यह कि ध्यान में हो सकता है कुछ व्यक्तियों को भावावेश की स्थिति पैदा

हो। उससे किसी दूसरे को चिंतित होने की जरूरत नहीं। हो सकता है कुछ भाव प्रकट होना चाहें। कोई रोने लगे। कोई हंसने लगे तो भी दूसरों को जरा भी चिंतित होने की जरूरत नहीं। और किसी के भीतर कोई भाव प्रकट होना चाहे तो उसे भी दबाने की जरूरत नहीं। उसे चुपचाप बह जाने देना है। उसके बह जाने के बड़े-बड़े गहरे परिणाम हैं। उसके मुक्त हो जाने के बड़े गहरे लाभ हैं। अगर भीतर कोई भी भाव प्रकट होना चाहे तो उसे बिल्कुल रोकने की जरूरत नहीं। यहां सब साधक इकट्ठे हुए हैं। वे एक दूसरे को समझेंगे। कोई भी स्थिति पैदा हो, दूसरों को चिंतित होने की जरूरत नहीं है। और किसी के भी भीतर भाव, कोई भाव पैदा होने लगे तो उसे रोकने की जबरदस्ती कोशिश करने की भी जरूरत नहीं। किसी को रोने का ख्याल आ जाए तो रोओ। किसी के आंसू बहने लगें तो बह जाने दें। जैसा मन में हो होने दें। कोई चीज भीतर रुकी है, सप्रेस्ड है वह बह जाए तो उसके बाद पीछे मन बहुत गहरी शांति को उपलब्ध होता है। इसलिए उसकी जरा भी चिंता लेने की जरूरत नहीं।
सुबह की बैठक समाप्त हुई।

शून्य की नाव
तीसरा प्रवचन

रहस्य का बोध
(3 मई 1968 रात्रि)

प्रिय आत्मन्!
सुबह जो कुछ मैंने कहा है, उस संबंध में बहुत से प्रश्न आए हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि क्या सारा ज्ञान ही आध्यात्मिक जीवन में बाधा है? क्या शास्त्र व्यर्थ हैं? क्या सिद्धांतों, दर्शनों को जो हम जानते हैं, उससे सत्य की दिशा में कोई भी अनुभव प्राप्त नहीं होता है? ऐसे ही और भी कुछ मित्रों ने प्रश्न पूछे हैं।
एक छोटा सा बच्चा अपने घर के बाहर खेल रहा था। सुबह का सूरज निकला है। सूरज की स्वर्ण जैसी किरणें घर के बगीचे में बरस रही हैं। सुबह की ताजी हवाएं हैं, तितलियां फूलों पर उड़ रही हैं और वह बच्चा घास में लेटा हुआ खेल रहा है। तभी उसे ख्याल आया है कि सूरज की इन नाचती किरणों को काश! वह कैद कर ले, बंद कर ले, अपने पास सुरक्षित कर ले। वह भीतर गया है और एक पेटी ले आया है। उसने सूरज की किरणों को बंद कर लिया है उस पेटी में, हवाओं को बंद कर लिया है!
और फिर, खुशी से नाचता हुआ पेटी को लेकर भीतर अपनी मां के पास पहुंच गया है और उसने कहा है कि तुझे पता भी नहीं है कि मैं पेटी में क्या बंद कर लाया हूं। सूरज की नाचती हुई किरणें, सुबह की हवाएं, वह सब मैं इसमें बंद कर लाया हूं!
उसे पता भी नहीं कि जिसे उसने बंद किया है, वह बंद नहीं किया जा सकता है। उसे पता भी नहीं कि वह पेटी को भीतर ले आया है, सूरज की किरणें बाहर ही रह गई हैं।
उसकी मां हंसने लगी और उसने कहाः खोल, अपनी पेटी को खोल, मैं भी देखूं,
तू किन किरणों को पकड़ लाया है; क्योंकि मैंने सुना नहीं अब तक कि किरणें कोई पकड़ कर ले आता है! और मैंने सुना नहीं कि कोई सुबह की हवाएं भी पेटियों में बंद हो जाती हैं!
उसने खुशी में और मां को चमत्कृत करने के लिए पेटी खोली है और दंग खड़ा
रह गया है। उसकी आंखों में आंसू आ गए हैं। उसकी पेटी में तो घुप्प अंधकार है, वहां तो कोई भी सूरज की किरण नहीं। वहां तो सुबह की कोई ताजी हवा नहीं। और वह रोने लगा है और कहने लगा है कि क्या! मैंने तो बंद किया था, वे सब किरणें कहां गईं?
मनुष्य भी सत्य के सागर के किनारे जीवन की जिन हवाओं को, प्रभु की जिन किरणों को अनुभव करता है--सोचता है, शब्दों की पेटियों में, शास्त्रों में बंद कर ले! बड़े श्रम से ये पेटियों बंद की जाती हैं, लेकिन जब भी कोई उन पेटियों को खोलता है तो वहां कोरे शब्दों के अतिरिक्त, खाली पेटियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसे बंद करने का कोई भी उपाय नहीं।
बंद करने के रास्ते कोई भी हों--शब्द भी अनुभवों को बंद करने के पेटियों से ज्यादा नहीं हैं। जीवन जो जानता है, शब्दों में हम उसे कैद करके प्रकट करना चाहते हैं। कोशिश करते हैं कि उसे पकड़ लें, जो हमने जाना, और शब्दों में बांध दें। लेकिन शब्द ही हाथ में रह जाते हैं। जिसे बांधा था, वह बंधन के हमेशा बाहर है।
परमात्मा को किसी भी बंधन में बांधने का कोई उपाय नहीं।
मौन में तो उसे कहा जा सकता है, शब्दों में कहने का कोई मार्ग नहीं।
शून्य में तो उसके अनुभव को पाया जा सकता है, लेकिन शास्त्रों से उसे निकाल लेने की कोई राह नहीं।
लेकिन हम शास्त्रों से जो कुछ उपलब्ध करते हैं, सोचते हैं, वह ज्ञान है। वे शब्द हैं कोरे। जिन्होंने उन शब्दों को कहा था, उन्होंने सोचा होगा कि जो वे जान रहे हैं, शायद शब्दों में बांध दिया जा सके। उनकी करुणा है

इसके पीछे, उनका प्रेम है इसके पीछे। मनुष्य-जाति भी उस सबको जान ले, जो उनको ज्ञात हुआ है।
लेकिन नहीं, शब्दों में कुछ भी उतर कर नहीं आता है, जैसे खाली कारतूस हों। ऐसे सभी शब्द खाली कारतूसों की तरह हैं, जिनके भीतर कोई अनुभव बंधा हुआ नहीं आता।
आपके पास अपना अनुभव हो तो शब्द भी सार्थक हो जाते हैं, लेकिन आपके पास अपना अनुभव न हो तो शब्द खाली कारतूस हैं, उनमें कुछ भी नहीं है। उन शब्दों को इकट्ठा करते रहें, ब्रह्म को, अद्वैत को, आत्मा को, सच्चिदानंद को। इन सब शब्दों को इकट्ठा करते रहें, इनका अंबार लगा लें, इनकी तिजोरी भर लें और आपको सिर्फ भ्रम पैदा होगा कि आपने कुछ जान लिया है। आप कुछ जान नहीं सकेंगे। और यह भ्रम बाधा है। इसलिए मैंने कहा, "ज्ञान नहीं ले जाता परमात्मा के द्वार तक, बल्कि यह प्रतीति ले जाती है कि मैं नहीं जानता हूं।"
यह जानने का भ्रम शब्दों से पैदा हो जाता है। यह जानने का भ्रम शास्त्रों से पैदा हो जाता है, सिद्धांतों से पैदा हो जाता है। जिस व्यक्ति को खोज करनी हो, उसे साहस करना पड़ता है।
सत्य को पाना हो तो शब्दों को छोड़ने का साहस करना पड़ता है।
हमारा ज्ञान शब्दों के जोड़ के अतिरिक्त और क्या है?
और इस ज्ञान से हमने भीतर अपने क्या कर लिया है? सिवाय इसके कि हमारी अस्मिता, हमारी ईगो, हमारा अहंकार मजबूत हो गया हो। हमें लगने लगा हो कि मैं कुछ हूं, क्योंकि "मैं" जानता हूं। हमारे इस "मैं" का पत्थर और भी भारी और वजनी हो गया हो। किसलिए हमने ये शब्द इकट्ठे कर रखे हैं, शायद इसीलिए ताकि मुझे ज्ञात हो सके, अनुभव हो सके कि मैं कुछ हूं, मैं जानता हूं। मैं अज्ञानी नहीं हूं।
मैं एक बात इस संबंध में आपको कहूं। जो भी बात आपके अहंकार को मजबूत करती हो, आप भलीभांति जान लेना वह जीवन-सत्य की खोज में दीवाल बन जाएगी, बाधा बन जाएगी, पत्थर बन जाएगी-जो भी चीज आपके "मैं" को मजबूत करती हो, घनीभूत करती हो और यह भ्रम पैदा करती हो कि मैं हूं।
एक समुद्र के तट पर जैसे हम आज यहां बैठे हैं, एक सांझ सूरज डूबता था
और एक बाप अपने छोटे से बेटे के साथ समुद्र के किनारे बैठा हुआ था। सूरज डूबने लगा। उस बाप ने सूरज की तरफ अंगुली उठाई और सूरज से कहाः गो डाउन, गो डाउन--नीचे जाओ, नीचे जाओ!
सूरज तो नीचे जा ही रहा था। सूरज नीचे चला गया और डूब गया। वह बच्चा तो हैरान रह गया अपने बाप की ताकत देख कर। इतना शक्तिशाली पिता है उसका कि सूरज को भी कहता है, गो डाउन, तो सूरज भी नीचे चला जाता है!
उसके बेटे ने अपने बाप की तरफ आंखें उठाईं, उसके कंधे पकड़ लिए और कहाः मेरे पिता, इतने शक्तिशाली हैं आप, तो एक कृपा और करें। उस बच्चे ने अपने बाप से कहाः डू इट डैडी अगेन, डू इट अगेन, एक बार और करके दिखाएं!
उस बाप ने बड़ी कठिनाई अनुभव की होगी। फिर सभी समझदार लोग रास्ते निकाल लेते हैं। उसने कहा, यह ऐसा काम है कि दिन में एक ही बार किया जा सकता है। कल सांझ फिर करके दिखाऊंगा।
बाप बेटे के सामने ज्ञानी बन जाता है, शक्तिशाली बन जाता है! पति पत्नी के सामने ज्ञानी बन जाता है, शक्तिशाली बन जाता है। गुरु विद्यार्थी के सामने शक्तिशाली बन जाता है, ज्ञानी बन जाता है। बूढ़े बच्चों के सामने ज्ञान दिखा कर अपने अहंकार को भर लेते हैं।
लेकिन जीवन को तो धोखा नहीं दिया जा सकता इस भांति। हम अपने को जरूर धोखा दे लेते हैं। हमारा सारा ज्ञान ऐसा है, जिसके पीछे सिर्फ एक बात की कोशिश है कि मैं यह दिखा सकूं कि मैं कुछ हूं। मैं जानता हूं, मैं शक्तिशाली हूं; मैं अज्ञानी नहीं, मैं कमजोर नहीं।
और सच्चाई क्या है?
हमारा ज्ञान और हम रेत पर खींची गई रेखाओं की तरह विलीन हो जाते हैं। हमारा ज्ञान और हम सूखे पत्तों की तरह हवाओं में उड़ जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। हमारा ज्ञान और हम कागज के भवनों की तरह हैं, जरा से झोंके में गिर जाते हैं।

आदमी का ज्ञान भी क्या हो सकता है? आदमी के खुद के होने की भी क्या सामर्थ्य है, और क्या शक्ति है? इस बड़े विराट जगत में आदमी क्या है, आदमी की सामर्थ्य क्या है?
चांद-तारों को शायद ही पता हो कि आप हैं। चांद-तारे बहुत दूर, इन दरख्तों को भी शायद ही पता हो कि आप हैं। दरख्त दूर, इस रेत को शायद ही पता हो कि आप हैं। इस विराट अस्तित्व में आपका, मेरा, हमारा मनुष्य का होना क्या है?
लेकिन मनुष्य ने बहुत से, बहुत से झूठे अहंकार पोषित कर लिए हैं। उनमें एक अहंकार सबसे गहरा और बुनियादी यह है कि हम जीवन की सच्चाइयों को जानते हैं। जीवन की कोई सच्चाई हमें ज्ञात नहीं है। जीवन बहुत अज्ञात है। एक मित्र ने पूछा है कि यह हो सकता है कि बहुत बड़ी-बड़ी चीजें हमें ज्ञात न हों, लेकिन कुछ चीजें तो मनुष्य को ज्ञात हैं।
जीवन में बड़ी और छोटी चीजों का कोई भेद और फासला नहीं। न तो सूरज बड़ा
है और न एक छोटा सा दीया छोटा है। एक कंकड़ भी छोटा नहीं है, क्योंकि अस्तित्व की उतनी ही मिस्ट्री, उतना ही रहस्य एक छोटे से कंकड़ में है, जितना कि बड़े हिमालय में होगा। एक पानी की बूंद भी उतनी ही रहस्यपूर्ण है, जितना हिंद महासागर है। छोटे और बड़े का भेद आदमी की कल्पना में है। अस्तित्व में छोटे और बड़े का कोई फासला नहीं है।
मैंने सुना है, एक सांझ जब सूरज पश्चिम में डूबने लगा तो उसने चिल्ला
कर कहा, कि मैं तो जा रहा हूं और रात अंधेरी उतरने को है, अब मेरी जगह अंधेरे से लड़ाई कौन करेगा, संघर्ष कौन करेगा?
चांद चुप रहा, तारे चुप रहे, लेकिन एक मिट्टी के छोटे से दीये ने कहा, मैं--"मैं रात भर लड़ता रहूंगा, जब तक आप वापस न लौट आएं।"
और रात भर एक छोटा सा दीया--रात भर अंधेरे से लड़ता रहा! सूरज बड़ा होगा बहुत, लेकिन एक छोटे से दीये के अंधेरे में संघर्ष को देखा है आपने? एक छोटे से दीये की ज्योति को तूफानों में कंपते देखा है आपने? उस छोटी सी ज्योति का अपना रहस्य है, जो किसी सूरज से कम नहीं। उस छोटी सी ज्योति में वह सब छिपा है, जो बड़े से बड़े सूरज में होगा या हो सकता है। कौन है छोटा और कौन है बड़ा?
एक कवि ने कहा है कि अगर हम एक छोटे से फूल को भी पूरा जान लें तो हम पूरे विश्व को जान लेंगे, पूरे जगत को, पूरे जीवन को। एक छोटा सा फूल, एक घास का छोटा सा फूल भी अगर आदमी पूरी तरह जान ले तो जानने को फिर कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। क्या एक बूंद को जान लेने से सागर नहीं जान लिया जाता? क्या एक रेत के एक छोटे से टुकड़े को जान लेने से सारे पहाड़ नहीं जान लिए जाते? एक छोटे से अणु का उदघाटन और जीवन के सारे अस्तित्व का बोध नहीं हो जाता है?
लेकिन नहीं, कुछ भी हमें ज्ञात नहीं है और जिसे हम ज्ञान समझ रहे हैं,
वह ज्ञान नहीं, केवल कामचलाऊ, युटेलिटेरियन परिचय है। उस परिचय के कारण यह भ्रम पैदा हो जाता है कि हम जानते हैं!
मुझे प्रीतिकर रहा है एक व्यक्ति का उल्लेख। एडीसन एक छोटे से गांव में गया। एडीसन ने अपने जीवन में एक हजार आविष्कार किए। शायद कोई वैज्ञानिक इतने आविष्कार कभी नहीं किए हैं--एक हजार! विद्युत के लिए, इलेक्ट्रिसिटी के लिए उससे बड़ा कोई तत्ववेत्ता नहीं था। कोई नहीं था, जो इतना जानता हो विद्युत के संबंध में जितना एडीसन। वह एक छोटे से गांव में गया है। गांव के लोगों को पता भी नहीं कि वह कौन है। गांव के स्कूल में, एक छोटी सी एक्झिबीशन, एक प्रदर्शनी चल रही है। स्कूल के बच्चों ने बहुत से खेल-खिलौने बनाए हैं। स्कूल के विज्ञान के विद्यार्थियों ने बिजली के भी खेल-खिलौने बनाए हैं। छोटी नाव बनाई हैं, रेलगाड़ी बनाई है, मोटरगाड़ी बनाई है।
और बच्चे बड़े आनंद से, प्रदर्शनी को जो भी लोग देखने आए हैं, उन्हें समझा रहे हैं एक-एक चीज को। एडीसन भी घूमता हुआ उस प्रदर्शनी में पहुंच गया। वह विज्ञान के हिस्से में चला गया। छोटे-छोटे बच्चे उसे समझा रहे हैं कि नाव विद्युत से चलती है। यह गाड़ी विद्युत से चलती है। वह खुशी से देख

रहा है-अवाक, विस्मय से भरा हुआ। वे बच्चे और भी खुश होकर उसे समझा रहे हैं।
तब अचानक उस बूढ़े ने उन बच्चों से पूछा, यह तो ठीक है कि तुम कहते हो कि
ये विद्युत से चलती हैं--यह मशीन, यह नाव, यह गाड़ी। लेकिन मैं अगर तुमसे पूछूं तो तुम बता सकोगे क्या? एक छोटा सा सवाल मेरे मन में आ गया है, वॉट इ.ज इलेक्ट्रिसिटी? विद्युत क्या है, बिजली क्या है?"
वे बच्चे बोलेः "बिजली! हम नाव तो चलाना जानते हैं बिजली से, लेकिन बिजली क्या है, यह हमें पता नहीं। हम अपने शिक्षक को बुला लाते हैं।"
वे अपने शिक्षक को बुला लाए हैं और एडीसन ने उनसे भी पूछा है, वॉट इ.ज इलेक्ट्रिसिटी?
शिक्षक भी हैरान हो गया। वह विज्ञान का स्नातक है, ग्रेज्युएट है। उसने कहा, यह तो हमें पता है कि विद्युत कैसे काम करती है, लेकिन यह हमें कुछ भी पता नहीं कि विद्युत क्या है। लेकिन आप ठहरें, हमारा प्रिंसिपल तो डी एससी है, वह तो विज्ञान का बहुत बड़ा विद्वान है। हम उसे बुला लाते हैं। वे अपने प्रिंसिपल को बुला लाए हैं। और एडीसन का किसी को पता नहीं कि सामने जो आदमी खड़ा है, वह विद्युत को सबसे ज्यादा जानने वाला आदमी है। वह प्रिंसिपल आ गया है, उसने समझाने की कोशिश की है। लेकिन एडीसन पूछता है, "मैं यह नहीं पूछता कि बिजली कैसे काम करती हैं, मैं यह नहीं पूछता कि बिजली किन-किन चीजों से मिल कर बनी है, मैं यह पूछता हूं कि बिजली क्या है?" उस प्रिंसिपल ने कहाः क्षमा करें। इसका तो हमें कुछ पता नहीं। वे सब बड़े पेशोपेश, बड़ी चिंता में पड़ गए हैं। तब वह बूढ़ा हंसने लगा और उसने कहाः शायद तुम्हें पता नहीं, मैं एडीसन हूं और मैं भी नहीं जानता हूं कि बिजली क्या है।
यह विनम्रता, यह ह्युमिलिटी सत्य के शोधक के लिए पहली शर्त है। एडीसन
कह सकता है कि मैं भी नहीं जानता हूं कि विद्युत क्या है। यह धार्मिक चित्त का लक्षण है, "रिलीजस माइंड" का लक्षण है कि वह जीवन के इस अनंत रहस्य को स्वीकार करता है।
जो व्यक्ति जीवन के रहस्य को स्वीकार करता है, वह व्यक्ति अपने ज्ञानी होने को स्वीकार नहीं कर सकता है। क्योंकि ये दोनों बातें आपस में विरोधी हैं। जब कोई कहता है कि मैं ज्ञानी हूं, तब वह यह कहता है कि जीवन में अब कोई रहस्य नहीं, मैंने जान लिया हैं। जिस बात को हम जान लेते हैं, उसमें फिर कोई रहस्य, कोई मिस्ट्री नहीं रह जाती।
जो व्यक्ति कहता है, मैं नहीं जानता हूं; वह यह कह रहा है, जीवन एक रहस्य है, जीवन एक अनंत रहस्य है।
व्यक्ति के अज्ञान पर मेरा इतना जोर क्यों है? यह जोर इसलिए है, ताकि जीवन की रहस्यमयता, जीवन का मिस्टीरियस होना आपके स्मरण में आ सके। ज्ञानी के लिए कोई रहस्य नहीं है। जहां हमने जान लिया, वहां रहस्य समाप्त हो जाता है। हजारों वर्षों से धर्म-शास्त्रियों ने मनुष्य के रहस्य की हत्या की है। वे हर चीज को ऐसा समझते हुए मालूम पड़ते हैं, जैसे जानते हों! उनसे अगर पूछो कि दुनिया किसने बनाई तो उनके पास रेडीमेड उत्तर तैयार है! वे कहते हैं कि ईश्वर ने बनाई है! और वे यहां तक बताते हैं, उनमें से कुछ कि छह दिन तक उसने दुनिया बनाई, फिर सातवें दिन विश्राम किया! उनमें से कुछ यह भी कहते हैं--कि तिथि, तारीख भी बताते हैं कि आज से इतने हजार वर्ष पहले फलां सन में, फलां तिथि में, ईसा से चार हजार वर्ष पहले पृथ्वी बनाई गई है, जीवन बनाया गया! वे हर चीज का उत्तर देने के लिए हमेशा तैयार हैं!
मनुष्य कैसे जान सकता है कि जीवन कब बनाया गया और कैसे बनाया गया? मनुष्य तो जीवन के बीच में स्वयं आता है, वह जीवन के प्रारंभ को कैसे जान सकता है? सागर की एक लहर कैसे जान सकती है कि सागर कब बना होगा? सागर के होने पर ही लहर उठती है। सागर जब नहीं था, तब लहर भी नहीं हो सकती है--तो लहर कैसे जान सकती है, मनुष्य कैसे जान सकता है? कोई भी कैसे जान सकता है कि जीवन कब और कैसे पैदा हुआ है?
लेकिन नहीं, ज्ञानियों का दंभ बहुत मजबूत है। वे हर चीज का उत्तर देने
को हमेशा तैयार हैं। ऐसा कोई प्रश्न नहीं, जिसके लिए वे इनकार करें। ऐसा

कोई प्रश्न नहीं, जिसके लिए वे कहें कि हम नहीं जानते हैं। आप कोई भी प्रश्न लेकर चले जाएं, धर्म-शास्त्रियों के पास हमेशा उत्तर तैयार हैं! इसलिए मैं आपसे कहता हूं कि एक वैज्ञानिक तो शायद कभी जीवन के सत्य के करीब पहुंच जाए, क्योंकि वैज्ञानिक मन में एक ह्युमिलिटी है, एक विनम्रता है। लेकिन धर्मों के पंडित कभी परमात्मा के पास नहीं पहुंच सकते हैं, क्योंकि उनके पास हर बात का उत्तर है, हर बात का ज्ञान है। वे सर्वज्ञ हैं, वे सभी कुछ जानते हैं! उनकी सर्वज्ञता जीवन के रहस्य को नष्ट कर रही है, इसका उन्हें कोई ख्याल नहीं। आदमी के जीवन से धर्म इसी तरह धीरे-धीरे क्षीण होता गया है।
अगर मनुष्य को वापस धर्म की दिशा में ले जाना हो तो उसके रहस्य को फिर
से जन्म देने की जरूरत है। इसलिए मैंने सुबह आपसे कहा, आदमी को अपने अज्ञान का बोध होना चाहिए। यह बहुत, यह बोध अत्यंत अनिवार्य है। इस बोध के बिना कोई गति नहीं हो सकती।
एक मित्र ने पूछा है कि ऐसी परिस्थितियां होती हैं कि उसमें हम साधना नहीं कर सकते हैं।
मुझे पता नहीं कि उनकी परिस्थितियां कैसी हैं, लेकिन मैं ऐसी एक भी परिस्थिति नहीं जानता हूं और कल्पना भी नहीं कर पाता हूं, जिसमें कि साधना न की जा सके। परिस्थितियों की बात हमेशा आदमी का बहाना है और हम बहाने ईजाद करने में बहुत कुशल लोग हैं। जो हमें नहीं करना होता है, उसके लिए हम हमेशा बहाना ईजाद कर लेते हैं!
एक मंदिर बन रहा था, सारे आस-पास के गांवों के लोग श्रमदान कर रहे थे
उस मंदिर में आकर--मंदिर बनाने में। मंदिर के बनाने वालों ने प्रार्थना की थी गांव-गांव के लोगों से कि सभी आकर थोड़ा-थोड़ा मंदिर बनाएं। कोई एक ईंट ले आए, कोई एक ईंट जोड़ दे; कोई एक पत्थर ले आए, कोई एक पत्थर रख दे; कोई मिट्टी ढो दे, लेकिन वह सब लोगों के श्रम से बने मंदिर।
बड़े समझदार लोग रहे होंगे उस गांव के। क्योंकि जब एक आदमी मंदिर बनाता है तो वह मंदिर अहंकार का मंदिर हो जाता है। और जब हजारों लोग प्रेम से मिल कर कुछ बनाते है तो वह प्रेम ही उस स्थान को मंदिर बना देता है। तो गांव में दूर-दूर से लोग उस मंदिर को बनाने आए हुए थे। वह किसी एक आदमी के पत्थर के आस-पास बनने वाला मंदिर नहीं था। काम शुरू हो गया था।
लेकिन एक आदमी सुबह से ही आकर खड़ा हो गया है चुपचाप उदास। वह कोई काम नहीं कर रहा है। वह एक झाड़ के नीचे चुपचाप खड़ा है। मंदिर बनाने वाले दो-चार लोग उसके पास गए और कहा, मित्र, तुम कुछ हाथ नहीं बंटाओगे? तुम कुछ सहयोग नहीं दोगे?
उस आदमी ने कहाः मैं भी चाहता हूं कि प्रभु के मंदिर में श्रम करूं, मैं भी चाहता हूं कि यह आनंद मुझे भी मिले, लेकिन भूखे पेट आदमी हो तो क्या कर सकता है? मैं भूखा पेट हूं, भूखे पेट कैसे श्रम किया जा सकता है?
बात तो ठीक थी। वे लोग उसे अपने घर ले गए। उसे भर पेट भोजन कराया।
फिर वे सब मंदिर की तरफ वापस लौटे। वे चारों लोग तो मंदिर में काम करने लग गए। वह आदमी फिर अपने वृक्ष के नीचे जाकर वैसा ही खड़ा हो गया, जैसे सुबह खड़ा था। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि वह फिर उदास, वहीं खड़ा है, उसने न एक पत्थर उठाया है, न एक ईंट ढोई है! वे फिर उसके पास गए और कहाः "महाशय, फिर कोई तकलीफ आ गई क्या, आप फिर भी कोई सहायता नहीं कर रहे हैं?" उसने कहा कि मैं भी चाहता हूं कि प्रभु के मंदिर में श्रम करूं, लेकिन भरे पेट कोई श्रम कर सकता है क्या?
सुबह वह खाली पेट था, इसलिए श्रम नहीं कर सकता था; अब वह भरे पेट है, इसलिए श्रम नहीं कर सकता! अब यह आदमी कब श्रम करेगा?
कोई इसलिए साधना नहीं कर पाता कि गरीब है, कोई इसलिए साधना नहीं कर पाता कि अमीर है। कोई इसलिए साधना की तरफ नहीं जा पाता कि पेट खाली है। कोई कहता है पेट भरा है, इसलिए हम उस ओर नहीं जा पाते। मुझे हर परिस्थिति के लोग मिलते हैं और मैंने पाया कि हर परिस्थिति के लोग कहते हुए पाए जाते हैं कि हमारी परिस्थिति ऐसी है कि हम कुछ करने में समर्थ नहीं है। अब तक मुझे एक आदमी नहीं मिला, जिसने यह कहा हो कि मेरी परिस्थिति ऐसी है कि मैं करने में समर्थ हूं!

जरूर कोई और बात है, परिस्थितियां असली कारण नहीं है। असली कारण, जो
हम नहीं करना चाहते हैं, उसके लिए हमेशा जस्टिफिकेशन, उसके लिए हमेशा न्याययुक्त कारण खोज लेते हैं और निश्चिंत हो जाते हैं!
ऐसी कौन सी परिस्थिति है, जिसमें आदमी शांत न हो सके; ऐसी कौन सी परिस्थिति है, जिसमें आदमी प्रेमपूर्ण न हो सके? ऐसी कौन सी परिस्थिति है, जिसमें आदमी थोड़ी देर के लिए मौन और शांति में प्रविष्ट न हो सके?
हर स्थिति में, हर परिस्थिति में--वह होना चाहे तो बिल्कुल हो सकता है।
यूनान में एक वजीर को उसके सम्राट ने फांसी की सजा दे दी थी। सुबह तक
सब ठीक था। दोपहर वजीर के घर सिपाही आए और उन्होंने घर को चारों तरफ से घेर लिया और वजीर को भीतर जाकर खबर दी, कि आप कैद कर लिए गए हैं और सम्राट की आज्ञा है कि आज संध्या आपको फांसी दे दी जाएगी, छह बजे! वजीर के घर उसके मित्र आए हुए थे। एक बड़े भोजन का आयोजन था। वजीर का जन्म-दिन था वह। एक बड़े संगीतज्ञ को बुलाया गया था। वह अभी-अभी अपनी वीणा लेकर हाजिर हुआ था। अब उसका संगीत शुरू होने को था। संगीतज्ञ के हाथ ढीले पड़ गए। वीणा उसने एक ओर टिका दी। मित्र उदास हो गए। पत्नी रोने लगी।
लेकिन उस वजीर ने कहाः छह बजने में अभी बहुत देर है, तब तक गीत पूरा हो जाएगा! तब तक भोज भी पूरा हो जाएगा! राजा की बड़ी कृपा है कि छह बजे तक कम से कम उसने फांसी नहीं दी।
लेकिन वीणा बंद क्यों हो गई? भोज बंद क्यों हो गया? मित्र उदास क्यों
हो गए हैं? छह बजने में अभी बहुत देर है। छह बजे तक कुछ भी बंद करने की कोई जरूरत नहीं।
लेकिन मित्र कहने लगे, अब हम भोजन कैसे करें? संगीतज्ञ कहने लगा, अब मैं वीणा कैसे बजाऊं? परिस्थिति बिल्कुल अनुकूल नहीं रही।
वह आदमी हंसने लगा, जिसको फांसी होने को थी! उसने कहाः इससे अनुकूल परिस्थिति और क्या होगी। छह बजे मैं मर जाऊंगा। क्या यह उचित न होगा कि उसके पहले मैं संगीत सुनूं? क्या यह उचित न होगा कि उसके पहले मैं अपने मित्रों से हंस लूं, बोल लूं, मिल लूं। क्या यह उचित न होगा कि मेरा घर एक उत्सव का स्थान बन जाए; क्योंकि सांझ छह बजे मुझे हमेशा को विदा हो जाना है।
घर के लोग कहने लगे, परिस्थिति अनुकूल न रही कि अब कोई वीणा बजाए। घर
के लोग कहने लगे परिस्थिति अनुकूल न रही कि अब कोई भोज हो।
लेकिन वह आदमी कहने लगा कि इससे अनुकूल परिस्थिति और क्या होगी। जब
छह बजे मुझे हमेशा के लिए विदा हो जाना है तो क्या यह उचित न होगा कि विदा होते क्षणों में मैं संगीत सुनूं? क्या यह उचित न होगा कि मित्र उत्सव करें? क्या यह उचित न होगा कि मेरा घर एक उत्सव बन जाए, कि जाते क्षण में मेरी स्मृति में, हमेशा मेरी याद में वे थोड़े से पल टिके हुए रह जाएं, जो मैंने अंतिम क्षण में, विदाई के क्षण में अनुभव किए थे।
और उस घर में वीणा बजती रही और उस घर में भोजन चलता रहा। यद्यपि लोग उदास थे, संगीतज्ञ उदास था। लेकिन वह वजीर खुश था, वह प्रसन्न था!
राजा को खबर मिली। राजा देखने आया कि वह वजीर पागल तो नहीं है! और जब
वह पहुंचा तो घर में वीणा बजती थी और मेहमान इकट्ठे थे। और राजा जब भीतर गया तो वजीर खुद भी आनंदमग्न बैठा था! तो उस राजा ने पूछा, तुम पागल हो गए हो? खबर नहीं मिली कि छह बजे सांझ मौत तुम्हारी आ रही है।
उसने कहाः खबर मिल गई, इसलिए आनंद के उत्सव को हमने तीव्र कर दिया है, उसे शिथिल करने का तो सवाल न था, क्योंकि छह बजे मैं विदा हो जाऊंगा, तो छह बजे तक हमने आनंद के उत्सव को तीव्र कर दिया है; क्योंकि ये अंतिम विदा के क्षण स्मरण रह जाएं।
राजा ने कहाः ऐसे आदमी को फांसी देना व्यर्थ है। जो आदमी जीना जानता है, उसे मरने की सजा नहीं दी जा सकती है। उसने कहाः मैं वापस ले लेता हूं। ऐसे प्यारे आदमी को अपने हाथों से मारूं, यह ठीक नहीं।
जीवन में क्या अवसर है, क्या परिस्थिति है, यह इस बात पर निर्भर नहीं होता है कि परिस्थिति क्या है। यह इस बात पर निर्भर होता है कि हम उस परिस्थिति को किस भांति लेते हैं, किस एटिट्यूड में, किस दृष्टि से।

तो मुझे ज्ञात नहीं होता कि कोई भी ऐसी परिस्थिति हो सकती है, जो आपके जीवन में प्रभु की तरफ जाने से आपको रोकती हो। आप ही अपने को रोकना चाहते हों तो बात दूसरी है। तब हर परिस्थिति रोक सकती है। और आप ही अपने को न रोकना चाहते हो, तो कोई ऐसी परिस्थिति न कभी थी और न कभी हो सकती है।
थोड़ा ध्यान से अपनी दृष्टि को देखने की कोशिश आप करना। परिस्थिति पर दोष मत देना। थोड़ा ध्यान करना इस बात पर, कि मेरा दृष्टिकोण, परिस्थिति को समझने की मेरी वृत्ति, मेरी एप्रोच, मेरी पहुंच तो कहीं गलत नहीं है। कहीं मैं गलत ढंग से तो चीजों को नहीं ले रहा हूं।
एक घटना मुझे और स्मरण आती है। कोरिया में एक भिक्षुणी, एक भिक्षुणी स्त्री, एक संन्यासिनी एक रात एक गांव में भटकी हुई पहुंची। रास्ता भटक गई है और जिस गांव पहुंचना चाहती थी, वहां न पहुंचकर दूसरे गांव पहुंच गई है। उसने जाकर एक द्वार पर दरवाजा खटखटाया। आधी रात है। दरवाजा खुला। लेकिन उस गांव के लोग दूसरे धर्म को मानते थे, वह भिक्षुणी दूसरे धर्म की थी। उस दरवाजे के मालिक ने दरवाजा बंद कर लिया और कहा, देवी, यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं। हम इस धर्म को नहीं मानते हैं। तुम कहीं और खोज कर लो और उसने चलते वक्त यह भी कहा कि इस गांव में शायद ही कोई दरवाजा तुम्हारे लिए खुले, क्योंकि इस गांव के लोग दूसरे ही धर्म को मानते हैं और हम तुम्हारे धर्म के शत्रु हैं।
आप तो जानते ही हैं, धर्म धर्म आपस में बड़े शत्रु हैं! एक गांव का अलग धर्म हैं, दूसरे गांव का अलग धर्म है! एक धर्म वाले को दूसरे धर्म वाले के यहां कोई शरण नहीं, कोई आशा नहीं, कोई प्रेम नहीं।
द्वार बंद हो जाते हैं। द्वार बंद हो गए उस गांव में! उसने दो-चार दरवाजे खटखटाए, लेकिन दरवाजे बंद हो गए। सर्द रात है, अंधेरी रात है, वह अकेली स्त्री है, वह कहां जाएगी?
लेकिन धार्मिक लोग इस तरह की बातें कभी नहीं सोचते। धार्मिक लोगों ने मनुष्यता जैसी बात कभी सोची ही नहीं! वे हमेशा सोचते हैं, हिंदू है या मुसलमान; बौद्ध है या जैन। आदमी का सीधा कोई मूल्य उनकी दृष्टि में कभी नहीं रहा है!
वह स्त्री उस गांव को छोड़ देना पड़ा। आधी रात वह जाकर गांव के बाहर एक वृक्ष के नीचे सो गई। कोई दो घंटे बाद ठंड के कारण उसकी नींद खुली। उसने आंख खोली। ऊपर आकाश तारों से भरा है! उस वृक्ष पर फूल खिल गए हैं! रात के खिलने वाले फूल, उनकी सुगंध चारों तरफ फैल रही है। वृक्ष के फूल चिटक रहे हैं। आवाज आ रही है और फूल खिलते चले जा रहे हैं। वह आधी घड़ी तक मौन उस फूल को, उन वृक्ष के फूलों को खिलते देखती रही। आकाश के तारों को देखती रही। फिर दौड़ी गांव की तरफ, फिर जाकर उसने उन दरवाजों को खटखटाया, जिन दरवाजों को उनके मालिकों ने बंद कर लिया था। आधी रात फिर कौन आ गया? उन्होंने दरवाजे खोले, वही भिक्षुणी खड़ी है! उन्होंने कहा हमने मना कर दिया, यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है, फिर दुबारा क्यों आ गई हो?
लेकिन उस भिक्षुणी की आंखों से कृतज्ञता के आंसू बहे जाते हैं। उसने कहा, नहीं, अब द्वार खुलवाने नहीं आई, अब ठहरने नहीं आई, केवल धन्यवाद देने आई हूं। काश! तुम आज मुझे अपने घर में ठहरा लेते तो रात आकाश के तारे और फूलों का चटक कर खिल जाना--मैं देखने से वंचित ही रह जाती। मैं सिर्फ धन्यवाद देने आई हूं कि तुम्हारी बड़ी कृपा थी कि तुमने द्वार बंद कर लिए और मैं खुले आकाश के नीचे सो सकी। तुम्हारी बड़ी कृपा थी कि तुमने घर की दीवालों से मुझे बचा लिया और खुले आकाश में मुझे भेज दिया।
जब तुमने भेजा था, तब तो मेरे मन को लगा था, कैसे बुरे लोग हैं। अब मैं
यह कहने आई हूं कि कैसे भले लोग हैं इस गांव के। मैं धन्यवाद देने आई हूं, परमात्मा तुम पर कृपा करे। जैसी तुमने मुझे एक अनुभव की रात दे दी, जो आनंद मैंने आज जाना है, जो फूल मैंने आज खिलते देखे हैं--जैसे मेरे भीतर भी कोई प्राणों की कली चिटक गई हो, और खिल गई हो। जैसी आज अकेली रात में मैंने आकाश के तारे देखे हैं, जैसे मेरे भीतर ही कोई आकाश स्पष्ट हो गया हो और तारे खिल गए हों। मैं उसके लिए धन्यवाद देने आई हूं। भले लोग हैं तुम्हारे गांव के।

परिस्थिति कैसी है, इस पर कुछ निर्भर नहीं करता। हम परिस्थिति को कैसा लेते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है।
हरेक व्यक्ति को परिस्थिति कैसी लेनी है, यह सीख लेना चाहिए। तब तो राह पर पड़े हुए पत्थर भी सीढ़ियां बन जाते हैं। और जब हम परिस्थितियों को गलत ढंग से लेने के आदी हो जाते हैं तो सीढ़ियां भी मंदिर की पत्थर मालूम पड़ने लगती हैं, जिनसे रास्ता रुकता है। पत्थर सीढ़ी बन सकते हैं, सीढ़ियां पत्थर मालूम हो सकती हैं। अवसर दुर्भाग्य मालूम हो सकते हैं, दुर्भाग्य अवसर बन सकते हैं। हम कैसे लेते हैं, हमारे देखने की दृष्टि क्या है, हमारी पकड़ क्या है, जीवन का कोण हमारा क्या है, हम कैसे जीवन को लेते और देखते है? आशा से भर कर जीवन को देखें।
साधक अगर निराशा से जीवन को देखेगा तो गति नहीं कर सकता है। आशा से भरकर जीवन को देखें। अधैर्य से भर कर जीवन को देखेंगे, अपने मन को, तो साधक एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता है। धैर्य से, अनंत धैर्य से जीवन को देखें। उतावलेपन में जीवन को देखेंगे, शीघ्रता में, भागते हुए, तो साधक एक इंच आगे नहीं बढ़ सकता है।
प्रतीक्षा से जीवन को देखें--अनंत प्रतीक्षा, से जो आज नहीं हुआ, वह कल
हो सकेगा; जो कल भी नहीं होगा, वह परसों हो सकेगा। हो सकेगा--प्रतीक्षा और आशा! मनुष्य के जीवन में अज्ञात के रास्ते पर, जहां कोई माइल स्टोन नहीं लगे हुए हैं, जिनसे पता चल सके कि हम कितने चल गए। जहां कोई भीड़ साथ नहीं चलती, जिससे आश्वासन मिल सके कि हम कितना बढ़ गए। एकांत के रास्ते पर, अकेले के रास्ते पर मनुष्य प्रभु की तरफ जाता है। वहां उसे अनंत प्रतीक्षा उसके साथ न हो, धैर्य साथ न हो, आशा साथ न हो, जीवन को देखने का आनंदपूर्ण दृष्टिकोण साथ न हो, प्रार्थनापूर्ण मन साथ न हो तो फिर आगे बढ़ना बहुत कठिन है।
इस संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी चाहिए और फिर कुछ प्रश्न बच रहेंगे तो कल हम उन पर बात करेंगे।
दो-तीन बातें समझने के बाद हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।
मैंने कहा, साधक के लिए आशापूर्ण दृष्टि चाहिए। सामान्यतः हमारी दृष्टि बड़ी निराशापूर्ण है। हम चीजों को हमेशा अंधेरे हिस्से की तरफ से देखते हैं। हमेशा हम वहां से देखते हैं, जहां चीजें दुखद, कष्टपूर्ण, प्रतिकूल प्रतीत होने लगती हैं।
एक आदमी एक अजनबी गांव में गया हुआ था। उसने जाकर गांव के भीतर पूछा
कि मैं फलां युवक को खोजने आया हूं। मैंने सुना है, वह बहुत अच्छी बांसुरी बजाता है। जिस आदमी से उसने कहा था, उसने कहा, छोड़ो यह ख्याल, वह आदमी क्या बांसुरी बजाएगा? वह आदमी चोर है, बेईमान है, झूठा है। वह क्या बांसुरी बजाएगा, उस जैसा चोर आदमी नहीं है हमारी बस्ती में!
तो उसने कहा कि फिर मैं क्या पूछूं? मुझे उसकी खोज करनी है। क्या मैं
यह पूछूं कि तुम्हारी बस्ती में जो सबसे ज्यादा चोर है, वह कहां रहता है? उसने कहा, इसी तरह पूछोगे तो पता भी चल सकता है।
उसने दूसरे आदमी से जाकर पूछा कि इस गांव में फलां आदमी को खोजने आया हूं, जो बहुत बड़ा चोर है, बेईमान है, झूठ बोलने वाला है।
उस आदमी ने कहाः मैं विश्वास भी नहीं कर सकता कि वह झूठ बोलता होगा, चोरी करता होगा। वह इतनी अच्छी बांसुरी बजाता है!
एक आदमी है, जो बांसुरी बजाता है। कोई देखता है कि बांसुरी इतनी अच्छी बजाता है तो कैसे चोरी कर सकता होगा। कोई दूसरा देखता है कि चोर है, ऐसा बुरा चोर है तो कैसे बांसुरी बजाता होगा।
हम कैसे देखते हैं, हम कहां से देखते हैं? हम जीवन में, मनुष्यों में, परिस्थितियों में, घटनाओं में क्या खोजते हैं? हम कोई प्रकाशोज्ज्वल पक्ष खोजते हैं या कोई अंधकारपूर्ण बात? हम क्या खोजते है? हम कोई प्रकाश की किरण खोजते हैं या अंधकार की कोई धारा? हम जब फूलों के पास जाते हैं तो कांटों की गिनती करते हैं या फूलों की? हम जब किसी मनुष्य के पास बैठते हैं तो हम उसके भीतर क्या देखते हैं, कोई प्रशंसा का द्वार या निंदा की कोई गंदी गली? हम क्या खोजते हैं? हमारी दृष्टि क्या है? और जो दृष्टि हमारी

होगी, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे हमारे भीतर उसी तरह का भाव घनीभूत होता चला जाता है।
साधक के लिए स्पष्ट रूप से बहुत आशावादी दृष्टि चाहिए। बहुत प्रकाशपूर्ण पक्ष को देखने की सामर्थ्य चाहिए। प्रत्येक स्थिति में वह खोज सके कि शुभ क्या है। और घने से घने कांटों के जंगल में वह एक फूल भी खोज सके कि यह फूल है तो उसका रास्ता निरंतर कांटों से मुक्त होता चला जाता है। रोज-रोज उसे फूलों के और गहरे से गहरे मार्ग मिलते चले जाते हैं।
हम जो खोजते हैं, वही हमें मिल जाए तो आश्चर्य नहीं है। वही हमें मिल जाता है। हम क्या खोजने निकल पड़े हैं, वही हमें मिल जाता है।
तो थोड़ी अपनी परिस्थितियों पर विचार करना। क्या उन परिस्थितियों में कोई भी संभावना नहीं है शुभ की? क्या उन परिस्थितियों में कोई भी अनुकूलता नहीं? उन परिस्थितियों में कोई भी मैत्री की संभावना नहीं? क्या उन परिस्थितियों में कुछ भी नहीं है, जहां से द्वार खोला जा सके, दीवाल तोड़ी जा सके, रास्ता बनाया जा सके, दीया जलाया जा सके?
खोजेंगे तो पाएंगे, बहुत कुछ है, बहुत कुछ है। नहीं खोजेंगे या गलत को खोजते रहेंगे, तो पाएंगे, कुछ भी नहीं है।
एक आदमी के पैर में चोट लग गई है। वह बहुत बेचैन, बहुत दुखी, परमात्मा
की निंदा करता हुआ है। एक मकान की एक बड़ी मंजिल में, न्यूयार्क की एक लिफ्ट पर सवारी कर रहा है, ऊपर जा रहा है। जैसे ही लिफ्ट उठने लगी है, उसने देखा है कि लिफ्ट पर एक और आदमी भी सवार है। उसके दोनों पैर कटे हुए हैं, वह कुर्सी पर बैठा हुआ है, हंस रहा है और गीत गुनगुना रहा है। उसके पैर में जरा सी चोट थी, वह परमात्मा के प्रति क्रोध से भरा हुआ था। उसने उस आदमी से पूछा, कि मेरे दोस्त, तुम्हारे पास क्या है? तुम्हारे दोनों पैर कटे हुए हैं और तुम गीत गुनगुना रहे हो और हंस रहे हो!
उस आदमी ने कहा, मेरी दोनों आंखें शेष हैं, मेरे दोनों हाथ अभी शेष हैं। मैंने ऐसा आदमी भी देखा है, जिसके दोनों हाथ भी कट गए थे। मैंने ऐसा आदमी भी देखा है, जिसकी दोनों आंखें भी नहीं थीं। दोनों पैर ही गए तो क्या हुआ? अभी मेरे दोनों हाथ शेष हैं, मेरी दोनों आंखें शेष हैं, अभी और सब कुछ तो शेष हैं। मैं दो पैर जो चले गए हैं, उनके लिए भगवान के प्रति क्रोध प्रकट करूं या जो मेरे पास शेष है, उसके लिए धन्यवाद दूं? मैं क्या करूं? जो हमारे पास है, उसके लिए हम धन्यवाद दें या जो हमारे पास नहीं है, उसके लिए हम शिकायत करें?
मर्जी है आदमी की, जो चाहे करे--चाहे शिकायत करे, चाहे प्रशंसा करे, कोई कुछ कहने नहीं आएगा। लेकिन दोनों हालतों में जमीन और आसमान का फर्क पड़ जाएगा और उस, उस फर्क से खुद को पीड़ा झेलनी पड़ेगी। शिकायत करने वाला मन धीरे-धीरे उदास हो जाता है और निराश हो जाता है।
धन्यवाद देने वाला मन धीरे-धीरे आनंद से भर जाता है, प्रफुल्लता से, आशा से।
जो आशा से भर जाता है, वह आगे कदम उठा सकता है। जो निराशा से भर जाता है, उसके उठे हुए कदम भी पीछे लौटने लगते हैं।
तो मैं आपको कहूंगा, अपनी परिस्थितियों में खोजें कि क्या वहां आशापूर्ण कोई भी संभावना नहीं?
दूसरी बात, क्या चौबीस घंटे में थोड़े से क्षणों के लिए अपनी परिस्थितियों से मुक्त नहीं हुआ जा सकता?
नींद रोज मुक्त कर देती है, आपकी सारी परिस्थितियां बाहर पड़ी रह जाती हैं। न आप गरीब रह जाते हैं, न आप अमीर रह जाते हैं। न आप दुखी रह जाते, न आप सुखी रह जाते। नींद आपको कहीं ले जाती है, जहां आप परिस्थितियों के बाहर हो जाते हैं।
क्या थोड़ी देर के लिए जानते-बूझते परिस्थितियों के बाहर नहीं हुआ जा सकता? और स्मरण रहे, जो आदमी अपनी परिस्थितियों के बाहर थोड़े से क्षणों को भी सचेत रूप से हो जाता है, उसे यह पता चल जाता है कि वह तो हमेशा ही परिस्थितियों के बाहर है--परिस्थितियां उसके आस-पास आती हैं और गुजर जाती हैं--वह हमेशा परिस्थितियों के बाहर है।

एक क्षण को भी परिस्थितियों का अतिक्रमण कर जाने पर यह पता चलता है कि मनुष्य की चेतना हमेशा परिस्थितियों के बाहर है। सांझ आती है, सुबह आती है, सूरज निकलता है, रात आ जाती है। आदमी के आस-पास से सब गुजर जाता है और आदमी हमेशा अलग खड़ा रह जाता है।
जिस दिन इस पृथकता का बोध होगा, जिस दिन जीवन के बीच इस साक्षी का भाव उदय होगा कि मैं तो दूर खड़ा रह जाता हूं, धाराएं आती हैं और बह जाती हैं, हवाएं आती हैं और गुजर जाती हैं। धूप आती है, शीत आती है, वर्षा आती है, गरमी आती है, और मैं दूर खड़ा रह जाता हूं, मैं पृथक, अलग खड़ा रह जाता हूं। कुछ भी मुझे छूता नहीं, कुछ भी मेरे प्राणों को अतिक्रांत नहीं करता, कुछ भी मेरे भीतर जाकर बदलाहट नहीं करता। मैं तो वहीं रह जाता हूं। चीजें आती हैं और बदल जाती हैं। जिस दिन यह एक क्षण को भी ख्याल होगा, उसी दिन जीवन भर के लिए स्थिति बन जाती है।
तो थोड़ी देर परिस्थितियों के बाहर होने की क्षमता जुटानी चाहिए। परिस्थितियों के लिए रोते रहने से कोई भी फल नहीं।
ध्यान का अर्थ इतना ही है कि हम परिस्थिति के बाहर जा रहे हैं थोड़ी देर को।
ध्यान का यही अर्थ हैं--परिस्थितियों के बाहर उठ जाना, दूर हट जाना, ऊपर उठ जाना, परिस्थितियों के पार खड़े हो जाना।
जैसे कोई हवाई जहाज पर ऊपर उड़ रहा हो। वृक्ष नीचे छूट जाते हैं, पहाड़ नीचे छूट जाते हैं, बादल नीचे छूट जाते हैं। ठीक वैसे ही जैसे ही कोई ध्यान के शून्य में प्रवेश करता है, वैसे ही परिस्थितियां, घर-द्वार, पत्नी- बच्चे अर्थ सब पीछे छूट जाता है। जीवन चेतना एक नई दिशा में उड़ान लेना शुरू कर देती है। और तब पता चलता है कि जिन परिस्थितियों से हम घिरे थे, उनमें घिरे तो जरूर थे, लेकिन घिरे होकर भी हमेशा बाहर थे। जैसे सूरज बादलों में घिर जाए, ठीक वैसे मनुष्य की चेतना परिस्थितियों में घिरी है, लेकिन हमेशा बाहर है। हमेशा बाहर है। यह बाहर होने का अनुभव ध्यान से उपलब्ध होता है।
परिस्थितियों पर दोष न दें, रास्ता निकालें, रास्ता जरूर मिल जाता है। ऐसी कोई भी जगह नहीं है, जहां से प्रभु तक रास्ता न जाता हो। हो सकता है थोड़ा पथरीला रास्ता हो; हो सकता है थोड़ा ऊबड़-खाबड़ रास्ता हो। हो सकता है, थोड़ा टकराना पड़े, तोड़ना पड़े, दौड़ना पड़े, जीतना पड़े, लड़ना पड़े। लेकिन ऐसी कोई भी जगह नहीं, जहां से उस तक रास्ता नहीं जाता है।
और मैं अंत में यह भी कह देना चाहता हूं कि वे लोग जो थोड़े कठिन रास्तों से गुजर कर आते हैं, उनकी उपलब्धि का मजा ही और है, उनके पा लेने का आनंद ही और है। उनके जीत लेने की, उनके विजय की कथा और गौरव कथा ही और है। इसलिए घबराएं न। हो सकता है कठिन रास्तों से गुजरकर आप और भी मधुमय स्रोतों तक पहुंच जाएं।
जो चलता ही चला जाता है, आशा और प्रतीक्षा से भरा हुआ, वह अवश्य पहुंच जाता है।
अब रात्रि के ध्यान के संबंध में थोड़ी सी बात समझ लें। फिर हम रात्रि
के ध्यान के लिए बैठें।
रात्रि के ध्यान के संबंध में दो बातें समझ लें। सुबह का ध्यान जागने
के बाद करने के लिए है। रात्रि का ध्यान सोने के पहले करने के लिए है।
रात बहुत अदभुत अवसर और मौका है। अगर ठीक से ध्यान में प्रवेश होकर सो जाया जाए तो पूरी रात धीरे-धीरे कुछ ही समय में ध्यान में परिवर्तित हो जाती है। अगर सोते क्षणों में ध्यान में प्रविष्ट हो जाए चेतना तो फिर धीरे-धीरे पूरी रात, पूरी निद्रा ध्यान का हिस्सा बन जाती है। यह शायद आपको ख्याल न हो।
नींद के अंतिम क्षण, जब आप सोते हैं, तो जो आखिरी क्षण हैं, जब आप नींद
के दरवाजे में प्रविष्ट होते हैं, उस अंतिम क्षण में वह जो संक्रमण का क्षण है, वह जो बीच का द्वार है, जहां से जागना समाप्त होता है और नींद शुरू होती हैं, उस क्षण में आपके मन की जो दशा होती है, रात भर चेतना उसी दशा के आस-पास घूमती रहती है। अगर आप चिंता में सो गए हैं तो रात चिंता में व्यतीत हो जाती है। अगर आप क्रोध में सो गए हैं तो रात के सपने क्रोध के आस-पास

घूमते रहते हैं। विद्यार्थी जानते हैं कि पढ़ते-पढ़ते रात जब वे सो जाते हैं तो रात भर परीक्षा के आस-पास घूमते रहते हैं।
चित्त जहां होता है नींद के पहले क्षण में, रात भर उसके आस-पास न्युक्लियस बन जाता है, केंद्र बन जाता है, चित्त वहीं घूमता है।
और सुबह भी जब आप उठते हैं तो आपने शायद कभी ख्याल न किया हो, निरीक्षण
न किया हो; करेंगे तो पता चल जाएगा कि सुबह जब पहला क्षण होता है नींद के टूटने का, तो चित्त सबसे पहले उसी भाव को उपलब्ध हो जाता है, जो सोते समय अंतिम भाव था, अंतिम विचार था। उसी जगह आप फिर सुबह खड़े हो जाते हैं, जहां रात आप सोए थे।
इसलिए रात्रि ध्यान में सो जाने का बहुत मूल्य है। अगर यह संभव हो जाए
कि आप रोज रात्रि में ध्यान में प्रवेश होकर सो जाएं तो आपके पूरे जीवन में एक आमूल क्रांति होनी शुरू हो जाएगी। सुबह आप बिल्कुल नये आदमी की तरह उठेंगे और उठते ही ध्यान पहली बात होगी, जो आपके स्मरण में आएगी। और रात के छह घंटे, सात घंटे, अगर शांत निद्रा में बीत जाएं, आपके चौबीस घंटे शांत हो जाएंगे, ताजे हो जाएंगे, नये हो जाएंगे।
जो लोग ध्यान के साथ निद्रा में गए हैं, जो लोग जाते हैं, वे मुझे कहते हैं फिर कि ऐसी नींद हमने जीवन में कभी भी नहीं जानी। ध्यान के साथ नींद संयुक्त हो जाए तो एक अभूतपूर्व घटना घट जाती है। यह रात्रि का ध्यान नींद के पहले करने का है। अंतिम, बिस्तर पर जब सो जाएं, सब काम से निपट जाएं, अब कुछ भी करने को शेष नहीं रहा, तब पंद्रह मिनट के लिए इस ध्यान को करें। और ध्यान करने के बाद चुपचाप सो जाएं, फिर उठें नहीं, फिर कुछ भी न करें। ध्यान के बाद चुपचाप सो जाएं, ताकि ध्यान में जो धारा शुरू हो, वह नींद में प्रविष्ट हो जाए, उसकी अंडर करेंट पूरी नींद में प्रविष्ट हो जाए। इस प्रयोग को लेट कर ही करना है। बिस्तर पर लेट जाएं और इसको करें। प्रयोग करने में दो-तीन बातें ख्याल में लेनी जरूरी हैं।
एक बात, सारे शरीर को शिथिल छोड़ देना जरूरी है, रिलैक्स छोड़ देना जरूरी है। शरीर पर कोई तनाव न हो, बिल्कुल ढीला छोड़ दें, जैसे शरीर में कोई प्राण ही नहीं रहे हों। एक-एक अंग ढीला छोड़ दें, कोई तनाव न रखें, कोई तनाव-खिंचाव शरीर पर न हो, बिल्कुल ढीला छोड़ दें, और आराम से लेट जाएं। फिर आहिस्ता से आंख बंद कर लें। फिर शरीर की शिथिलता के लिए थोड़े से सुझाव, थोड़े से सजेशंस शरीर को दें। सिर्फ यह भाव थोड़ी देर करते रहें, एक मिनट-दो मिनट कि शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है यह... कि शरीर शिथिल हो रहा है। एक, दो-तीन मिनट भाव करने से दस-पांच दिन में, यह आप पाएंगे, शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाएगा।
और जब शरीर शिथिल होता है तो बॉडीलेसनेस पैदा हो जाती है। जब शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाता है तो अशरीरी भाव का अनुभव होता है। पता चलता है, शरीर है ही नहीं। शरीर का पता तनाव के कारण चलता है, स्ट्रेन के कारण चलता है। शिथिल शरीर का कोई पता नहीं चलता।
आपको पता होगा, पैर में कांटा गड़ जाए तो पैर का पता चलता है, सिर में दर्द हो तो सिर का पता चलता है। अगर पैर में कांटा नहीं तो पैर का कोई पता नहीं चलता कि पैर है भी या नहीं। सिर में दर्द न हो तो सिर का भी कोई पता नहीं चलता है कि सिर है या नहीं। जहां शरीर में तनाव होता है, वहीं शरीर का बोध होता है।
स्वस्थ आदमी का एक ही लक्षण है कि उसे शरीर का कहीं भी पता न चलता हो। हेल्थ का और कोई लक्षण नहीं होता। बीमारी का पता चलता है, स्वास्थ्य का कोई पता नहीं चलता।
तो ध्यान के पहले शरीर को इतना शिथिल छोड़ देना है कि उसका पता ही न चले। और एक पंद्रह दिन के प्रयोग में, और जो लोग ठीक ईमानदारी से, सिंसियरिटी से प्रयोग करें, आज ही हो सकता है। कि आज ही जब हम यहां प्रयोग करें तो आपको पता चले, जैसे शरीर समाप्त हो गया है, शरीर है ही नहीं। तो दो तीन मिनट तक यह सुझाव देना है, शरीर शिथिल हो रहा है।
फिर श्वास को ढीला छोड़ देना है। रोकना नहीं है, शिथिल छोड़ देना हैं; जितनी जाए जाए, आए आए। और दो-तीन मिनट तक यह भाव करना है कि श्वास भी शांत हो रही है--शांत हो रही है, शांत हो रही है। भाव करते-करते ही श्वास शांत हो

जाएगी, बहुत अल्प आती-जाती मालूम पड़ेगी। थोड़े दिन प्रयोग करने पर पता भी नहीं चलता कि श्वास आ रही कि नहीं आ रही, इतनी शांत हो जाती है!
शरीर शिथिल होता है तो श्वास अपने आप शांत होती हैं, श्वास शांत होती
है तो विचार क्षीण हो जाते हैं। फिर तीसरा सुझाव मन पर देना है कि विचार भी शांत हो रहे हैं।
ये तीन सुझाव देने हैं। और सुबह जो हमने ध्यान किया था--चौथी बात वही
है कि फिर चुपचाप पड़े रह जाना है, सुनते रहना है--हवाओं को, दरख्तों को, समुद्र को; कोई आवाज आती हो, आवाजों को। रास्ते पर लोग निकलते होंगे, वाहन निकलते होंगे, टैक्सी चलती होगी, ठेला चलता होगा--सब चुपचाप सुनते रहना है।
तीन बातेंः शरीर, श्वास और विचार, इनको शांत छोड़ देना है। और फिर चुपचाप, जो सुबह हमने प्रयोग किया था, वही लेट कर करते रहना है। एक दस मिनट। फिर इसके बाद चुपचाप करवट लेकर सो जाना है।
यहां तो हम प्रयोग को करेंगे, ताकि आप समझ लें। फिर प्रयोग को जाकर अपने स्थान पर सोते समय करें और सो जाएं। यहां तो प्रयोग आप समझ लें, इसलिए करना जरूरी है। और यहां परिणाम भी उसका बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है, वह उतना ही महत्वपूर्ण हो सकता है, जितनी हमारी तैयारी, जिज्ञासा, खोज, आकांक्षा हो।
तो अब हम प्रयोग करेंगे। तो सब लोग इतने फासले पर हो जाएं कि आप लेट सकें, फिर प्रकाश अलग कर दिया जाएगा। और आपको मैं आज तो सुझाव दूंगा, ताकि आपको ख्याल में आ जाए कि क्या सुझाव देने हैं, फिर अपने कमरे पर जाकर आप प्रयोग को करें और सो जाएं।
तो अपने-अपने लिए जगह बना लें, थोड़े फासले पर हट जाएं। कोई किसी को छूता हुआ नहीं रहेगा और सब लोग लेट सकें, ऐसी अपनी जगह बना के, चुपचाप बिना बातचीत किए।
हां थोड़े हट जाए, क्योंकि लेटना पड़ेगा, इसलिए हट जाएं।
बातचीत बिल्कुल भी न करें, क्योंकि बातचीत से कोई संबंध नहीं है। जरा
भी बातचीत नहीं, किसी को भी बाधा न हो। अपनी-अपनी जगह बना लें, कहीं भी हट जाएं...
हां, मैं मान लेता हूं कि आप जल्दी जगह बना लें। बिल्कुल अकेले में हो जाएं और वहां आराम से लेट जाएं, ताकि आप पूरा प्रयोग कर सकें और गहरे जा सकें... प्रकाश को रहने देंगे... रहने देंगे... अच्छा...
ठीक है, अपनी-अपनी जगह लेट जाएं। अपनी-अपनी जगह लेट जाएं। इस मौके का पूरा फायदा लें,
इस अवसर का पूरा उपयोग करें। इतनी अदभुत रात मिले, न मिले। इतना एकांत, ऐसा स्वर्ण अवसर आए, न आए।
बिल्कुल लेट जाएं। आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें।
आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें...
फिर मैं सुझाव देता हूं, मेरे साथ अनुभव करें। भाव के साथ ही साथ परिणाम होने शुरू हो जाएंगे।
ठीक है अनुभव करें, शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। बिल्कुल ढीला छोड़ दें, जैसे शरीर में कोई प्राण ही नहीं। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है।
भाव करें, शरीर शिथिल हो गया है। शरीर बिल्कुल शांत और शिथिल हो गया है। जैसे हो ही नहीं, जैसे शरीर का कोई अस्तित्व ही न हो। हवाएं हैं, आकाश है, वृक्ष है, लेकिन शरीर नहीं है। शरीर बिल्कुल शिथिल और शांत हो गया है। श्वास को भी धीमा छोड़ दें... श्वास शांत हो रही है... श्वास भी बिल्कुल धीमी छोड़ दें... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है...
विचार भी शांत हो रहे हैं... विचार शांत हो रहे हैं।... विचार शांत हो रहे हैं विचार शांत हो रहे हैं। विचार शांत हो रहे हैं। विचार भी शांत हो गए हैं...

सब मौन हो गया है... अब चुपचाप सुनते रहें--हवाओं को, आवाजों को, चुपचाप सुनते रहें...
भीतर धीरे-धीरे बिल्कुल सन्नाटा हो जाएगा। रात जैसी बाहर शांत है, ठीक वैसा ही सब कुछ भीतर भी शांत हो जाएगा। सुनें, शांत हवाओं को सुनते रहें... दस मिनट तक चुपचाप सुनते रहें...
मन शांत होता जा रहा है... धीरे-धीरे मन शांत होता जा रहा है... सब शांत होता जा रहा है... भीतर एक सन्नाटा और शून्य आ जाएगा...
मन शांत होता जा रहा है... सुनते रहें... चुपचाप सुनते रहें... मन शांत होता जा रहा है... हवाएं रह जाएंगी... आप मिट जाएंगे... बिल्कुल मिट जाएं... सब शांत होता जा रहा है...
मन शांत हो गया है... मन बिल्कुल शांत हो गया है... मन शांत हो गया है... हवाएं ही रह गई हैं... रात रह गई... आप बिल्कुल शांत हो गए हैं... बिल्कुल मिट गए... सुनते रहें, सुनते रहें...
मन शांत हो गया है... एक अपूर्व शांति भीतर उतर आई है... सब शांत हो गया है... सब मौन हो गया है... आप बिल्कुल मिट गए हैं। आप हैं ही नहीं...
मन बिल्कुल शांत हो गया है... इस शांति को पहचाने... इस शांति को समझें...
सब शांत हो गया है...
इसी शांति में रोज-रोज प्रवेश करना है। रोज और गहरे, और गहरे प्रवेश होना है। यही शांति अंततः परमात्मा के मंदिर तक पहुंचा देती है।
अब धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। दो-चार गहरी श्वास लें। फिर बहुत धीरे से आंख खोलें। जैसी शांति भीतर है, वैसी ही बाहर भी मालूम होगी। लेटे ही लेटे धीरे से आंख खोलें। बाहर भी सब शांत है।
फिर बहुत आहिस्ता से उठ कर अपनी जगह बैठ जाएं। किसी को बाधा न हो।
आवाज न करें, चुपचाप उठ कर बैठ जाएं। जिससे उठते न बने, वह दो-चार गहरी श्वास और ले। फिर धीरे-धीरे उठें और बैठें।
एकदम से उठते न बने तो थोड़ी देर लेटे रहें। आहिस्ता से उठें। उठ कर चुपचाप बैठ जाएं। किसी को पड़ोस में बाधा न हो। धीरे से उठ आएं।
इस प्रयोग को जाकर रात अभी बिस्तर पर करें, ताकि ताजा वह आपके ख्याल में रहे। और फिर प्रयोग को करने के बाद चुपचाप सो जाएं।

रात की बैठक समाप्त हुई।

शून्य की नाव
चौथा प्रवचन

जीवन का सहज-स्वीकार
(4 मई 1968 सुबह)

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य के जीवन में जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य है, वह शायद यही कि जीवन से उसकी आत्म-एकता, उसकी एकतानता टूट गई है। जीवन से हम कुछ दूर-दूर खड़े हो गए हैं। जीवन और हमारे बीच कोई सेतु नहीं रहा, कोई संबंध नहीं रहा।
मां के पेट से बच्चे का जन्म होता है, तब शरीर तो टूट जाता है मां से अलग। तब एक भेद एक पृथकता की यात्रा शुरू होती है; जो मां के साथ संयुक्त और इकट्ठा था, वह पृथक हो जाता है। शायद उसी पृथकता से यह भ्रम पैदा होता है कि शरीर अलग हो गया, इसलिए प्राण भी अलग हो गए होंगे। शायद शरीर अलग हो गया, इसलिए भीतर के जीवन में भी भेद पड़ गया होगा।
मां के शरीर से बच्चे का शरीर अलग होता है, लेकिन आत्मा एक और अपृथक है, समस्त जीवन से। वहां कोई भेद नहीं है, वहां कोई भिन्नता नहीं है। लेकिन उस अभेद का, उस अद्वैत का, हमें कोई अनुभव नहीं होता, कोई स्मरण नहीं होता, कोई बोध नहीं होता है!
मनुष्य के जीवन में यही एक दुर्भाग्य है। इस दुर्भाग्य को ही पार कर जाना साधक कि लिए दूसरा चरण है।
पहले चरण में मैंने आपसे कहा, ज्ञान मिथ्या है, ज्ञान असत्य है। सीखे हुए शब्द, सिद्धांत और शास्त्रों से ज्यादा नहीं। अज्ञान, इग्नोरेंस मनुष्य की वस्तु-स्थिति है। अज्ञान को जो स्वीकार कर लेता है और यह स्मरण से भर जाता है कि मैं नहीं जानता हूं, जीवन और उसके बीच की पहली दीवाल गिर जाती है।
लेकिन एक दूसरी दीवाल भी है। उसके संबंध में ही आज सुबह मुझे आपसे बात करनी है। वह भी गिर जानी चाहिए, तो ही व्यक्ति परमात्मा के सत्य को अनुभव कर सकता है। जो परमात्मा का सत्य है, वही स्वयं का सत्य भी है। उसे कोई जीवन कहे, उसे कोई मोक्ष कहे, उसे कोई ईश्वर कहे, इससे कोई भी भेद, कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। दूसरे दुर्भाग्य की दीवाल... पहले दुर्भाग्य की दीवाल ज्ञान की दीवाल है। दूसरे दुर्भाग्य की दीवाल क्या है?
जो भी जीया जा सकता है। जो भी जाना जा सकता है, उसके साथ एक हो जाना अनिवार्य है।
एक छोटी सी घटना से मैं समझाने की कोशिश करूंगा।
कोई डेढ़ हजार वर्ष पहले चीन के एक सम्राट ने सारे राज्य के चित्रकारों को खबर की कि वह राज्य की मोहर बनाना चाहता है। मोहर पर एक बांग देता हुआ, बोलता हुआ मुर्गा, उसका चित्र बनाना चाहता है। जो चित्रकार सबसे जीवंत चित्र बना कर ला सकेगा, वह पुरस्कृत भी होगा, राज्य का कलागुरु भी नियुक्त हो जाएगा। और बड़े पुरस्कार की घोषणा की गई।
देश के दूर-दूर कोनों से श्रेष्ठतम चित्रकार बोलते हुए मुर्गे के चित्र बना कर राजधानी में उपस्थित हुए। लेकिन कौन तय करेगा कि कौन सा चित्र सुंदर है? हजारों चित्र आए थे। राजधानी में एक बूढ़ा कलाकार था। सम्राट ने उसे बुलाया कि वह चुनाव करे, कौन सा चित्र श्रेष्ठतम बना है।
वही राज्य की मोहर बन जाएगा।
उस चित्रकार ने उन हजारों चित्रों को एक बड़े भवन में बंद कर लिया और स्वयं भी उस भवन के भीतर बंद हो गया! सांझ होते-होते उसने खबर दी कि एक भी चित्र ठीक नहीं बना है! सभी चित्र गड़बड़ हैं! एक से एक सुंदर चित्र आए थे। सम्राट स्वयं देख कर दंग रह गया था। लेकिन उस बूढ़े चित्रकार ने कहाः कोई भी चित्र योग्य नहीं हैं!
राजा हैरान हुआ। उसने कहाः तुम्हारे मापदंड क्या हैं, तुमने किस भांति जांचा कि चित्र ठीक नहीं?

उसने कहाः मापदंड एक ही हो सकता था और वह यह कि मैं चित्रों के पास एक जिंदा मुर्गे को ले गया और उस मुर्गे ने उन चित्रों के मुर्गों को पहचाना भी नहीं, फिकर भी नहीं की, चिंता भी नहीं की! अगर वे मुर्गे जीवंत होते चित्रों में तो वह मुर्गा घबड़ाता या बांग देता, या भागता, या लड़ने को तैयार हो जाता! लेकिन उसने बिल्कुल उपेक्षा की, उसने चित्रों की तरफ देखा भी नहीं! बस एक ही क्राइटेरियन, एक ही मापदंड हो सकता था। वह मैंने प्रयोग किया। कोई भी चित्र मुर्गे स्वीकार नहीं करते हैं कि चित्र मुर्गों के हैं।
सम्राट ने कहाः यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। यह मैंने सोचा भी नहीं था कि मुर्गों से परीक्षा करवाई जाएगी चित्रों की! लेकिन उस बूढ़े कलागुरु ने कहा कि मुर्गों के सिवाय कौन पहचान सकता है कि चित्र मुर्गे का है या नहीं?
राजा ने कहाः फिर अब तुम्हीं चित्र बनाओ।
उस बूढ़े ने कहाः बड़ी कठिन बात है। इस बुढ़ापे में मुर्गे का चित्र बनाना बहुत कठिन बात है।
सम्राट ने कहाः तुम इतने बड़े कलाकार, एक मुर्गे का चित्र नहीं बना सकोगे?
उस बूढ़े ने कहाः मुर्गे का चित्र तो बहुत जल्दी बन जाए, लेकिन मुझे मुर्गा होना पड़ेगा। उसके पहले चित्र बनाना बहुत कठिन।
राजा ने कहाः कुछ भी करो।
उस बूढ़े ने कहाः कम से कम तीन वर्ष लग जाएं, पता नहीं मैं जीवित बचूं
या न बचूं।
उसे तीन वर्ष के लिए राजधानी की तरफ से व्यवस्था कर दी गई और वह बूढ़ा जंगल में चला गया। छह महीने बाद राजा ने लोगों को भेजा कि पता लगाओ, उस पागल का क्या हुआ? वह क्या कर रहा है?
लोग गए। वह बूढ़ा जंगली मुर्गों के पास बैठा हुआ था!
एक वर्ष बीत गया। फिर लोग भेजे गए। पहली बार जब लोग गए थे, तब तो उस बूढ़े चित्रकार ने उन्हें पहचान भी लिया था कि वे उसके मित्र हैं और राजधानी से आए हैं। जब दुबारा वे लोग गए तो वह बूढ़ा करीब-करीब मुर्गा हो चुका था। उसने फिकर भी नहीं की और उनकी तरफ देखा भी नहीं, वह मुर्गों के पास ही बैठा रहा!
दो वर्ष बीत गए। तीन वर्ष पूरे हो गए। राजा ने लोग भेजे कि अब उस चित्रकार को बुला लाओ, चित्र बन गया हो तो। जब वे गए तो उन्होंने देखा कि वह बूढ़ा तो एक मुर्गा हो चुका है, वह मुर्गे जैसी आवाज कर रहा है, वह मुर्गों के बीच बैठा हुआ है, मुर्गे उसके आस-पास बैठे हुए हैं। वे उस बूढ़े को उठा कर लाए। राजधानी में पहुंचा, दरबार में पहुंचा।
राजा ने कहाः चित्र कहां है?
उसने मुर्गे की आवाज की! राजा ने कहाः पागल, मुझे मुर्गा नहीं चाहिए, मुझे मुर्गा का चित्र चाहिए। तुम मुर्गे होकर आ गए हो। चित्र कहां है?
उस बूढ़े ने कहाः चित्र तो अभी बन जाएगा। सामान बुला लें, मैं चित्र बना दूं। और उसने घड़ी भर में चित्र बना दिया। और जब मुर्गे कमरे के भीतर लाए गए तो उस चित्र को देख कर मुर्गे डर गए और कमरे के बाहर भागे।
राजा ने कहाः क्या जादू किया है इस चित्र में तुमने?
उस बूढ़े ने कहाः पहले मुझे मुर्गा हो जाना जरूरी था, तभी मैं मुर्गे
को निर्मित कर सकता था। मुझे मुर्गे को भीतर से जानना पड़ा कि वह क्या होता है। और जब तक मैं आत्मसात न हो जाऊं, मुर्गे के साथ एक न हो जाऊं, तब तक कैसे जान सकता हूं कि मुर्गा भीतर से क्या है, उसकी आत्मा क्या है?
आत्मैक्य के बिना, जीवन के साथ एक हुए बिना, जीवन के प्राण को, जीवन की आत्मा को भी नहीं जाना जा सकता। जीवन का प्राण ही प्रभु है। वही सत्य है। जीवन के साथ एक हुए बिना कोई रास्ता नहीं है कि कोई जीवन को जान सके।
और जिसे हम जानते नहीं, उसे हम जी भी कैसे सकते हैं? इसीलिए तो हम सिर्फ नाममात्र को जीवित मालूम होते हैं--नाममात्र को। इसीलिए तो हम मृत्यु से भयभीत प्रतीत होते हैं, क्योंकि जो व्यक्ति एक बार जीवन के स्वाद को चख लेगा, उसके लिए मृत्यु बचती ही नहीं, उसके लिए कोई मृत्यु नहीं

रह जाती। मृत्यु का भय इस बात की खबर है कि हमें जीवन का कोई भी पता नहीं है।
जीवन का पता होगा भी नहीं। हमने जीवन के साथ कभी एकता, एकतानता नहीं साधी, कभी हम लयबद्ध नहीं हुए। यह कैसे टूट गई है लय, यह संगीत हमारा विच्छिन्न कैसे हो गया? जीवन के और हमारे बीच यह दरार, यह खाई कैसे पैदा हो गई? इसे समझ लेना जरूरी है तो शायद यह खाई इसी क्षण पूरी भी की जा सकती है। यह खाई पैदा हो गई है मनुष्य-जाति में--आज तक मनुष्य को समझाने वाले कुछ ऐसे लोगों के कारण, जिन्होंने जीवन की निंदा की है, जीवन का विरोध किया है, जीवन को असार कहा है, जीवन को दुख कहा है, जीवन को छोड़ देने योग्य कहा है, जीवन से मुक्त हो जाने के लिए कहा है।
जिन लोगों ने भी, जिन शिक्षाओं ने भी जीवन की निंदा की है, जीवन का कंडेमनेशन किया है, उन शिक्षाओं ने ही मनुष्य और जीवन के बीच एक खाई खड़ी कर दी है। जिसकी निंदा हो, जिसका विरोध हो, जो असार हो, व्यर्थ हो, उसके साथ संबंधित होने का मार्ग कहां रह जाता है?
और हमने जीवन की सब भांति निंदा की है। शरीर की निंदा की है, क्योंकि शरीर जीवन का प्रकट रूप है। संसार की निंदा की है, क्योंकि संसार परमात्मा का प्रकट रूप है। पदार्थ की निंदा की है, क्योंकि पदार्थ प्राण का प्रकट रूप है। जो भी प्रकट है, उस सबकी हमने निंदा की है!
और अप्रकट की प्रशंसा की है! अप्रकट पर न मुट्ठी बांधी जा सकती है, न अप्रकट को छुआ जा सकता है, न अप्रकट को देखा जा सकता है। अदृश्य की तो केवल बातें की जा सकती हैं, दिखाई तो पड़ता है दृश्य। अरूप की तो केवल चर्चा हो सकती है, पकड़ में तो आता है रूप। और रूप की, आकार की, दृश्य की निंदा की गई है! स्वभावतः अरूप की सिर्फ चर्चा रह गई हमारे हाथों में।
और स्मरण रहे कि रूप को जो जान ले, वह अरूप से परिचित हो सकता है। जो पदार्थ को जान ले, वह अपदार्थ से परिचित हो सकता है। जो शरीर को पहचान ले, वह आत्मा से भी संबंधित हो सकता है। लेकिन जो रूप का ही विरोध कर दे, वह अरूप तक जाने की अपनी सीढ़ी ही तोड़ देता है, इसका उसे कुछ पता ही नहीं है। लेकिन रूप की, और आकार की और जीवन की, पदार्थ की और शरीर की, और संसार
की इतनी निंदा की गई है, इतना विरोध किया गया है, इतनी घृणा जाहिर की गई है, जिसका कोई हिसाब लगाना आज कठिन है।
काश, जीवन की इतनी प्रशंसा की गई होती! काश, इतने लोगों ने जीवन के आनंद के गीत गाए होते! काश, इतने मुखों से, इतनी वाणियों से जीवन की गरिमा और गौरव अभिव्यक्त हुआ होता! तो आज पृथ्वी दूसरी होती, आज पृथ्वी धर्म से भरी होती, आज जीवन आनंद से भरा होता, आज जीवन एक संगीत बन गया होता।
लेकिन मनुष्य-जाति के अब तक के शिक्षकों ने जीवन की निंदा की है, विरोध किया है। यह जो विरोध है, यह जो जीवन की बुनियादी रूप से निंदा है, कंडेमनेशन है, उसने हमारे और जीवन के बीच अगर एक दीवाल खड़ी कर दी हो तो बिल्कुल स्वाभाविक है।
धर्म का विचार करते ही यह ख्याल आना शुरू हो जाता है कि जीवन व्यर्थ है, जीवन छोड़ देना है, जीवन से हट जाना है, जीवन से मुक्त हो जाना है, आवागमन से मुक्त हो जाना है! धर्म का चिंतन ही कुछ मरणोंमुखी, कुछ सुसाइडल, कुछ आत्महत्यावादी, कुछ जीवन-निषेध का बन गया है। जीवन के आनंद में सम्मिलित होने का आमंत्रण नहीं मालूम होता धर्म। जीवन पर आंख बंद कर लेने का, जीवन से हट जाने का, उदासीन हो जाने का निमंत्रण मालूम होता है।
और जब हम चित्त से उदासीन हों और चित्त से असार समझें और चित्त हमारा
यह कहे कि सब व्यर्थ है। और हम जन्मे, यह हमारे पापों का कारण है। और जिस दिन हमारे पाप नष्ट हों जाएंगे, उस दिन हमारे जन्म का भी कोई कारण न रह जाएगा। हम मोक्ष में उस जगह, जहां कोई जन्म नहीं, कोई मृत्यु नहीं; जहां कोई देह नहीं; जहां कोई इंद्रियां नहीं; जहां कोई रूप नहीं, उस अरूप में प्रविष्ट हो जाएंगे। यह जो भाव-दशा हो तो फिर जीवन की इस वृहत लीला से संबंधित नहीं हुआ जा सकता है।
यह बात सबसे पहले समझ लेने जैसी है कि मनुष्य को अधार्मिक बनाने वाले लोग, वे लोग नहीं हैं, जिन्होंने ईश्वर को इनकार किया है। वे लोग भी नहीं,

जिन्होंने आत्मा को अस्वीकार किया है। बल्कि वे लोग, जिन्होंने रूप का खंडन किया है और निंदा की है और जीवन की प्रकट अभिव्यक्ति को असार कहा है। एक स्मरण मुझे आता है। एक मित्र, एक संन्यासी, मेरे पास कुछ दिन मेहमान थे। आते ही मेरे आस-पास जो बड़ी बगिया थी, जिसमें बहुत फूल थे; आते ही उन्होंने फूलों को ऐसे देखा है, जैसे कोई शत्रु को देखता हो। और उन्होंने मुझसे कहा, आपको भी फूलों से प्रेम है! आपको भी फूलों से कोई लगाव है!
मैं चुप रह गया, क्योंकि जो फूलों को भी न समझ पा रहा हो, वह फूलों की प्रशंसा में कही किसी बात को समझ पाएगा, इसकी कोई आशा न थी। फिर रात हुई। और एक मित्र कुछ गीत सुनाने आए थे तो मैं गीत सुनने बैठ गया। उन संन्यासी ने कहाः आपको गीतों से भी लगाव है, गीतों से भी प्रेम है!
मैं फिर हंसा और चुप रह गया, क्योंकि जो गीत ही न समझ पा रहा हो, गीत की प्रशंसा में कही गई बात को समझ सकेगा, इसकी कोई आशा न थी।
फिर रात हम खाना खाने बैठे। वे इस भांति खाना खाने लगे, जैसे कोई एक बोझ भरा काम कर रहा हो, कोई एक जबरदस्ती, कोई एक नेसेसरी ईविल, कोई एक आवश्यक बुराई है, जो करनी पड़ रही है, मजबूरी है कि भोजन खाना पड़ रहा है, वैसे वे भोजन करने लगे! मैंने उनसे कहा, "आप यह क्या कर रहे हैं?" उन्होंने कहाः मैं अस्वाद का व्रती हूं, अस्वाद का व्रत लिया हुआ है। भोजन ऐसे करना है, जैसे कोई मिट्टी खा रहा हो! कोई स्वाद नहीं लेना है!" मैंने कहाः यह तो मैं समझ गया था। जब फूलों को देख कर आपके हृदय में जो भाव उठा, जब गीत को सुन कर, जो भाव उठा, तभी मैं समझ गया था। क्योंकि अगर हम ठीक से देखें तो फूल आंख का आहार है और गीत और संगीत कान का आहार है। सब भोजन है।
जीवन चारों तरफ एक भोजन है, एक आहार है।
आंख जब हरे वृक्ष को देखकर आनंदित होती है तो आंख को भोजन मिल गया और कान जब वीणा को सुनकर प्रफुल्लित हो उठते हैं, तो उन्हें भी भोजन मिल गया। चौबीस घंटे सभी इंद्रियों से आहार चल रहा है। परमात्मा बहुत द्वारों से प्रवेश पा रहा है। परमात्मा के ये सभी प्रवेश आनंद से गृहीत हों; स्वागत से, अनुग्रह से, ग्रैटिट्यूड से भरे हुए हों तो वैसे आदमी का संबंध जीवन से हो सकता है।
लेकिन जो इन सभी द्वारों पर घृणा का भाव लिए खड़ा हो, विरोध, शत्रुता लिए खड़ा हो; जो कान इसलिए बंद कर लेता हो कि संगीत न सुनाई पड़ जाए; जो स्वाद का इसलिए शत्रु हो जाता हो, जो आंख इसलिए बंद कर लेता हो। आंख फोड़ लेने वाले लोग भी हुए हैं, उन्होंने अपनी आंख फोड़ ली! इसके तो वे मालिक थे, लेकिन उनके प्रभाव में सारी मनुष्य-जाति की आंखें धुंधली हो गई हैं--इसका उनको कोई हक नहीं था।
आंखें फोड़ ली हैं लोगों ने कि कहीं रूप आकर्षित न कर ले! जीवन जहां- जहां से प्रवेश पा सकता है मनुष्य के भीतर, वे सारे द्वार बंद कर लेने हैं! ऐसे बंद द्वारों वाला व्यक्ति अहंकार को तो उपलब्ध हो सकता है, ब्रह्म भाव को कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे यह भाव से तो भर सकता है कि मैं कुछ हूं, लेकिन जीवन क्या है, इसका उसे कोई ओर-छोर नहीं मिल सकता है।
जीवन को जानने की संभावना तो तभी है, जब हमारा सारा व्यक्तित्व एक ओपनिंग, एक द्वार बन जाए। गीत के लिए, हवाओं के लिए, सौंदर्य के लिए, संगीत के लिए, स्वाद के लिए, सुगंध के लिए, सब तरफ हमारा जीवन एक द्वार बन जाए। साधक मेरी दृष्टि में एक द्वार बन जाता है। सब भांति से एक द्वार बन जाता है। जीवन का जो क्षुद्रतम है, वह भी उसे विराट का ही अंग प्रतीत होता है। वह जो छोटे-छोटे अणु हैं, वह भी उसे ब्रह्मांड ही प्रतीत होते हैं। वह जो छोटा सा फूल खिल जाता है, यह जो कोयल कहीं बोल रही है अनजान में, यह सब उसके प्राणों के अंतर्गीत बन जाते हैं, अंतर्नाद बन जाता है। वह सब स्वीकार कर लेता है। जीवन जो भी देता है, सभी को अनुग्रह से स्वीकार कर लेता है। भोजन करना भी उसे प्रार्थना के तुल्य है, स्नान करना भी उसे पूजा की भांति है। हवाओं में श्वास लेना भी उसे भगवान के लिए धन्यवाद है।
जीवन से संबंध और आत्म-ऐक्य तभी हो सकता है, जब जीवन के प्रति निंदा का भाव गिर जाए।

कल मैंने आपको ज्ञान छोड़ने को कहा। आज मैं आपसे जीवन के प्रति निंदा
के भाव को छोड़ने के लिए कहना चाहता हूं। लेकिन गहरे, बहुत गहरे हमारे चित्त में कंडीशनिंग, बहुत गहरे संस्कार बैठ गए हैं जीवन की हर चीज की निंदा के। अगर आपको बुद्ध कहीं हंसते हुए मिल जाएं तो आप बड़े चिंतित हो जाएंगे। अगर महावीर आपको कहीं वीणा सुनते हुए मिल जाएं तो आप बड़े हैरान हो जाएंगे।
क्रिश्चियंस कहते हैं, "जीसस नेवर लॉफ्ड--जीसस कभी हंसे नहीं!" हम उदास संतों को देखने के ही आदी हो गए हैं।
जीवन से जिन्होंने मृतक का भाव ले लिया है जीवन के प्रति, जो जीते-जी
मर जाने की कोशिश में लग गए हैं, उनकी छाया मनुष्य के चित्त पर गहरी हो गई हैं, बहुत अंधकारपूर्ण हो गई है। हंसता हुआ संत हमारी कल्पना में भी नहीं आता! हम बुरे आदमी को हंसता हुआ देख सकते हैं, भले आदमी को नहीं! भले आदमी के साथ हंसी का कोई संबंध नहीं! जीवन के आनंद का कोई संबंध नहीं!
धार्मिक लोग वे ही हो सकते हैं, जो किसी भांति रुग्ण हों, उदास हों, बीमार हों! धार्मिक लोग वे ही हो सकते हैं, जो जीवन के प्रति एक शत्रुता का भाव लेकर किसी कोने में खड़े हो गए हों! रंगों का, स्वरों का, सुगंधों का धार्मिक आदमी से क्या संबंध है? लेकिन नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूं, ठीक धार्मिक व्यक्ति और ही तरह का व्यक्ति होगा।
तीन संतों के बाबत मैंने सुना है। वे तिब्बत में हुए। और "तीन हंसते हुए संत", ही उनका नाम था उनका कोई और नाम न था--थ्री लाफिंग सेंट्स। इस तरह ही वे जाने जाते हैं। वे जिस गांव में जाते, उस गांव में हंसी की, खुशी की एक लहर पहुंच जाती। वे हंसते, वे इतना हंसते कि हंसना संक्रामक हो जाता और धीरे-धीरे पूरा गांव हंसने लगता! वे जिस चौराहे पर खड़े हो जाते, वहां हंसी के फव्वारे छूट जाते।
लोग उनसे पूछते, आपका कोई उपदेश नहीं है? वे कहते, एक ही हमारा उपदेश
है कि जीवन को हंसी के भाव से स्वीकार कर लो। जीवन को रोते हुए, स्वीकार जो करेगा, जीवन से उसका कोई संबंध नहीं हो सकता। वे लोगों से कहते कि रोते हुए आंसुओं से भरे हुए, कोई आदमी प्रभु के मंदिर में न कभी प्रविष्ट हुआ है, और न कभी हो सकेगा। मुस्कुराहट तो उसका मार्ग बन सकती हैं। मुस्कुराहटों के इंद्रधनुष तो उस तक पहुंचने के सेतु हो सकते हैं, लेकिन रोती हुई सूरतें नहीं। एक ही हमारा संदेश है कि लोग प्रफुल्लित मन से जीवन को अंगीकार करना सीख जाएं।
वे तीनों बूढ़े हो गए और गांव-गांव भटकते रहे। मुझे पता नहीं, वैसे संत कहीं और भी हुए हों। काश, वैसे संत और कहीं भी होते तो यह दुनिया आज दूसरी होती। फिर उन तीनों में से--वे तीनों बूढ़े हो गए और एक संत की मृत्यु हो गई। जिस गांव में एक संत की मृत्यु हुई, गांव के लोगों ने कहा, अब तो रोएंगे वे जरूर, अब तो दुखी होंगे, आज तो हम उनकी आंखों में आंसू देख लेंगे।
गांव के लोग इकट्ठे हो गए झोपड़े के पास, लेकिन वे दोनों हंसते हुए अपने मृतक साथी को लेकर बाहर निकले। और उन्होंने गांव के लोगों से कहा कि आओ और देखो, कितना अदभुत आदमी था यह। लोगों ने देखा, उसकी लाश पड़ी है, लेकिन उसके होंठ मुस्कुरा रहे हैं! वह जो आदमी मर गया है, वह हंसते हुए ही मर गया है! और मरते वक्त कह गया है अपने मित्रों को कि एक कृपा करना, मुझे जब ले जाकर, मेरी अरथी को तुम जलती हुई लकड़ियों पर रखो तो मेरे वस्त्र मत निकालना, मुझे स्नान मत कराना।
तिब्बत में वैसा रिवाज, आदमी मर जाए तो कपड़े निकालना, स्नान कराना, नये कपड़े पहनाने। एक नई यात्रा पर कोई जाता है तो उसे नये कपड़े तो कम से कम पहना ही देने चाहिए। लेकिन वह आदमी कह गया है कि नहीं, मेरे कपड़े मत बदलना, मुझे स्नान मत कराना, इन्हीं कपड़ों में मुझे चिता पर चढ़ा देना!
फिर वह सारा गांव, लेकर संत की अरथी को, मरघट पहुंच गया है। हजारों लोग इकट्ठे हो गये हैं, चिता जल गई है, अरथी रख दी गई है। जैसे ही आग लगी है, शरीर जलना शुरू हुआ है, अरथी को चिता पर चढ़ा दिया गया है। आग लग गई है, लोग उदास खड़े हैं। हजारों की भीड़ है, लेकिन फिर एकदम धीरे-धीरे भीड़ में हंसी छूटने लगी! लोग हंसने लगे! हंसी फैलती चली गई, हंसी बिल्कुल संक्रामक हो गई! क्या हो गया था?

जैसे ही लाश में आग लगी, लोगों को पता चला कि वह आदमी अपने कपड़ों के भीतर पटाखे, फुलझड़ी छिपा कर मर गया है। कपड़े में उसने भीतर पटाखे, फुलझड़ी छिपा रखे हैं! लाश में आग लगी है, पटाखे फूटने लगे हैं, फुलझड़ियां छूटने लगी हैं और लोग हंसने लगे और वे कहने लगे कि अदभुत था वह आदमी! वह मरा हंसता हुआ, जीया हंसता हुआ और मरने के बाद भी लोग उसे हंसते ही विदा दें, इसकी भी व्यवस्था, इसका भी आयोजन कर गया!
उस गांव में लोगों को पता चला, हंसते हुए जीया जा सकता है, हंसते हुए मरा जा सकता है। मरने के बाद भी पीछे हंसी की संभावना पैदा की जा सकती है। ऐसे व्यक्ति को मैं धार्मिक व्यक्ति कहता हूं।
रोते, उदास लोगों को विदा कर दें। धर्म उनसे बहुत पीड़ित हो चुका। मनुष्य के जीवन में मनुष्यता के ऊपर जो सबसे बड़े दुर्भाग्य गिरे, वह रोते हुए लोगों का प्रभाव है। रोते हुए लोगों से हम पीड़ित हैं, रुग्ण और उदास लोगों से हम पीड़ित हैं। जो लोग जीवन की खुशी को उपलब्ध नहीं कर पाते, उनकी स्थिति वैसी ही है, जैसी उस लोमड़ी की आपने सुनी होगी, जो अंगूरों के एक वृक्ष के नीचे पहुंच गई थी। और लटके थे अंगूर, पके हुए और वह छलांग लगाने लगी। लेकिन वृक्ष था ऊंचा और लोमड़ी नहीं पहुंच सकी वहां तक तो वह वापस लौट पड़ी और रास्ते में कहती गई, खट्टे अंगूर हैं, उन्हें पाने की भी क्या जरूरत है!
जीवन के आनंद को, जीवन के फूलों को और जीवन के गीतों को, जो उपलब्ध नहीं कर पाते, वे कहते हैं, जीवन खट्टा है, अंगूर खट्टे हैं; जीवन बुरा है, जीवन असार है। अपनी असफलता को वे जीवन की निंदा में छिपा लेते हैं। और जिन्हें जीवन के ही अंगूर नहीं मिल पाए, उन्हें परमात्मा के अंगूर मिल जाएंगे, इसकी कोई उम्मीद नहीं है।
जीवन के रस से तो यह पता मिल सकता था कि परमात्मा कहां है, लेकिन जीवन
से विरस होकर तो उसका पता-ठिकाना भी नहीं मिल सकेगा। जीवन के भीतर जाकर तो खबर मिल सकती थी कि रास्ता कहां ले जाता है, प्रभु तक कैसे जाएगा; लेकिन जीवंत को ही पीठ करके, जो खड़े हो गए हों, उनके लिए कोई रास्ता नहीं।
प्रभु कहीं भी है अगर, तो जीवन के भीतर; जीवन के विरोध में नहीं, जीवन
के विपरीत नहीं।
लेकिन अस्वस्थ, रुग्ण, हारे हुए लोग, पराजित लोग अपने को दोष न देकर जीवन को ही दोष दे देते हैं। हारा हुआ आदमी हमेशा इसी कोशिश में होता है कि कोई बहाना मिल जाए, खुद को दोष न देना पड़े। हारे हुए लोग--स्मरण रखिए, हारे हुए लोग अब तक धर्म में उत्सुक होते रहे हैं। हारे हुए लोगों की जमात धर्म के आस-पास इकट्ठी हो गई है। मंदिरों और मस्जिदों में जाइए, वहां हारे और पराजित लोग दिखाई पड़ेंगे। आदमी जब मरने के करीब पहुंचने लगता है, जब जीवन पर सारी अंगुलियां छूट जाती हैं, बूढ़ा होने लगता है, लगता है जीवन अब गया, तब गया; तब वह मंदिर की यात्रा शुरू कर देता है। तब वह सोचता है कि अब मंदिर का वक्त आ गया है।
जब जीवन का वक्त गुजर जाता है, तब मंदिर का वक्त आता है!
अगर कहीं कोई मंदिर है तो जीवन के घनेपन में है।
यह जो उदास, यह जो निराश, यह जो असफल लोगों का समूह है, इसने धर्म को आक्रांत कर रखा है। मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं इस दूसरी चर्चा में, अपने को उदास और रोते हुए लोगों से मुक्त कर लीजिए। रुग्ण, अस्वस्थ, विक्षिप्त लोगों से मुक्त कर लीजिए। अगर जीवन के अंगूर न मिलते हो तो खट्टे मत कहिए। यही कहिए कि मेरी छलांग छोटी है।
छलांग बड़ी की जा सकती है। साधक छलांग बड़ी करने का प्रयास करता है। पलायनवादी एस्केपिस्ट कहता है, अंगूर खट्टे हैं और लौट जाता है।
छलांग बड़ी करिए। जीवन हाथ में न आता हो तो हाथ और बढ़ाइए। आंखें न देख पाती हों तो आंखों को और खोलिए। कान न सुन पाते हों तो कानों को और प्रशिक्षण दीजिए। भोजन में न मिल पाता हो परमात्मा, तो अस्वाद पर मत लौट जाइए। क्योंकि अस्वाद अंगूरों को खट्टा कहने की दलील है। तो स्वाद को और शिक्षित कीजिए, स्वाद को और साधिए, क्योंकि जो लोग जानते थे, उन्हें अन्न में भी ब्रह्म दिखाई पड़ सका है। जो लोग जानते हैं, उन्हें स्वर में भी ब्रह्म दिखाई पड़ सका है। जो लोग जानते हैं, उन्हें रूप में भी उसके ही

दर्शन हो सके हैं। सौंदर्य भी उन्हें उसकी ही खबर बन गई। सब कुछ उसकी ही खबर बन गया है। शरीर का सौंदर्य भी भीतर छिपे परमात्मा की खबर बन जाता है, लेकिन देखने वाली आंख चाहिए।
आंख मत फोड़िए। आंख को शिक्षित करिए।
इंद्रियों की शिक्षा है साधना। इंद्रियों का विरोध नहीं, दमन नहीं, सप्रेशन नहीं। एक-एक इंद्रिय ऐसी साधी जा सकती है कि उसके द्वार से प्रभु तक पहुंचने का मार्ग बन जाए।
तो मैं आपसे कहूंगा, स्वाद है तो पूर्ण स्वाद लीजिए, अस्वाद नहीं। भोजन कर रहे हों तो ऐसा करिए कि भोजन करना ही एकमात्र कृत्य रह जाए। सारा प्राण, सारी देह, सारी शक्ति, समग्र चेतना भोजन करे। जरा सा स्वाद छूट न जाए। स्वाद में इतनी लीनता, इतनी तल्लीनता, इतना आत्मभाव! फिर आपको पता चलेगा कि अन्न ब्रह्म हो जाता है। फिर आपको पता चलेगा कि स्वाद भी उसकी खबर है। और तब भोजन करके अगर आपका हृदय धन्यवाद से भर जाए परमात्मा के लिए तो आश्चर्य नहीं। तब सौंदर्य को भी देखिए और परिपूर्ण तल्लीनता से, परिपूर्ण एकात्मभाव से। और तब आपको सौंदर्य के पीछे अरूप के दर्शन होने लगें तो आश्चर्य नहीं।
रूप तो केवल ऊपर की खोल है, भीतर अरूप छिपा है।
जब आपको कोई फूल सुंदर लगता है तो क्या सुंदर लगता है वहां? क्या आपको फूल की पंखुड़ियां, उनमें दौड़ते हुए केमिकल्स, खनिज-क्या सुंदर लगता है? नहीं, फूल की पंखुड़ियां भी नहीं, फूल का पदार्थ भी नहीं, फूल के खनिज भी नहीं, फूल का रसायन भी नहीं। लेकिन उन सबके मेल से जो अरूप है, उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। वह जो पीछे छिपा है, उस सबके मेल से वह जो पीछे छिपा है, उसकी खबर मिलनी शुरू हो जाती है।
जब आप वीणा सुनते हैं तो तारों की टंकार अच्छी लगती है, हाथों का प्रभाव--क्या अच्छा लगता है? नहीं, लेकिन स्वरों के माध्यम से, वह जो स्वरों के बीच में अस्वर छिपा हुआ है, शून्य छिपा हुआ है, स्वरों के बीच-बीच में, वह जो शून्य छिपा हुआ है, उसकी खबर मिलनी शुरू हो जाती है। वह जो संगीत के पीछे निःशब्द छिपा हुआ है, संगीत से वह प्रकट होने लगता है। जीवन की यह अदभुत लीला है कि यहां जीवन में जो कुछ भी प्रकट होता है,
वह कंट्रास्ट में, विरोध में, प्रकट होता है।
स्कूल में हम बच्चों को पढ़ाते हैं तो काला तख्ता लगा लेते हैं। सफेद खड़िया से लिखते हैं उस पर। सफेद खड़िया काले की पृष्ठभूमि में प्रकट होती है, पूर्णता से प्रकट होती है। सफेद तख्ते भी बना सकते हैं, लेकिन तब पढ़ना मुश्किल हो जाएगा। सफेद खड़िया लिखेगी, सफेद तख्तों पर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा।
जीवन हमेशा कंट्रास्ट में प्रकट होता है। आत्मा को प्रकट होना है तो शरीर में प्रकट होती है। शरीर काले ब्लैक बोर्ड की तरह भूमि बन जाता है, आत्मा के प्रकट होने के लिए। सौंदर्य को प्रकट होना है तो रूप में प्रकट होता है, ताकि अरूप कंट्रास्ट ले ले, वह दिखाई पड़ सके। शून्य को प्रकट होना है तो संगीत में प्रकट होता है। उलटी है बात। संगीत तो ध्वनि है। शून्य निर्ध्वनि है। लेकिन निर्ध्वनि को प्रकट होना हो तो ध्वनि का माध्यम, ध्वनि का बैक-ग्राउंड, ध्वनि की पार्श्वभूमि चाहिए।
परमात्मा को प्रकट होना है तो पदार्थ का संसार चाहिए।
जीवन हमेशा पृष्ठभूमि मांगता है अभिव्यक्ति के लिए। अगर पृष्ठभूमि न
हो तो जीवन प्रकट नहीं हो सकता। जीवन की सारी अभिव्यक्ति कंट्रास्ट में है।
लेकिन अगर हम तख्ते को मिटा दें तो फिर सफेद अक्षर भी विलीन हो जाएंगे। अगर हम शरीर के शत्रु हो जाएं तो आत्मा भी हमसे दूर हो जाएगी। अगर हम संसार के दुश्मन हो जाएं तो हम परमात्मा की तरफ जाना भी बंद हो जाएंगे। यह सीधा सा गणित दिखाई नहीं पड़ सकता। यह अत्यंत दो और दो चार जैसी बात दिखाई नहीं पड़ सकी! क्यों नहीं दिखाई पड़ सकी? न पड़ने के कुछ कारण हैं। हमें भी वही बात स्वीकृत हो जाती है--वही बात, जो हमारी जीवन-स्थिति के अनुकूल पड़ती है। हम सब भी हारे हुए लोग हैं, इसलिए हारे हुए लोगों का संदेश हमें ठीक सुनाई पड़ जाता है। हम सब भी पराजित लोग हैं, इसलिए पराजित लोग जब

कहते हैं कि जीवन असार है, तब हमें भी यह बात बिल्कुल ही ठीक मालूम पड़ने लगती है। जो हमारी आदत का हिस्सा हो जाता है, वही हमारी समझ में आता है, शेष हमें समझ में नहीं आता।
मैंने सुना है, एक मछुआ जीवन भर मछलियों को मारने का धंधा करता रहा था। एक बार देश की राजधानी में पहुंच गया। वह राजधानी घूम-घूम कर देखने लगा--चकित, विमुग्ध। फिर वह उस रास्ते पर पहुंच गया, जहां देश के, राजधानी के इत्र बिकते थे, सुगंधियां बिकती थीं। वह सुगंधियों का बाजार था, वह वहां पहुंच गया। जाते ही उसे अपनी नाक बंद कर लेनी पड़ी, क्योंकि उसे बड़ी बदबू मालूम पड़ी! उसने मछलियों की सुगंध को ही जाना था। उसी को वह सुगंध कहता था।
वह बहुत हैरान हो गया, लेकिन भागने की भी कोशिश की उसने कि बाजार से निकल जाए। लेकिन लंबा बाजार था, राजधानी का बाजार था। वहां दुनिया की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सुगंधियां थीं। आखिर वह बेहोश होकर गिर पड़ा। गंध इतनी तेज मालूम होने लगी कि वह बेहोश होकर गिर पड़ा। भीड़ इकट्ठी हो गई। पास के दुकानदार कीमती से कीमती सुगंधिंयां लेकर आ गए कि शायद सुगंध सुंघाने से उसे होश आ जाए। उन्हें पता भी नहीं कि वह सुगंधों की वजह से ही बेहोश हो गया है। वे उसे सुगंधियां सुंघाने लगे। वह तड़फड़ाने लगा, हाथ-पैर फेंकने लगा! उसको तो बोलते भी नहीं बन रहा है! वह और बेहोश हो गया!
और तभी उस भीड़ में एक आदमी बाहर आया, जो पहले मछुआ रह चुका था। उसने कहा कि मित्रो, तुम बड़ा गड़बड़ किए दे रहे हो। वह आदमी मर जाएगा। आप हटो, अपनी सुगंधियां दूर हटाओ। इन्हीं के कारण वह बेहोश हो गया है!
लेकिन उसके पास उसका झोला था, जिसमें वह मछलियां बाजार बेचने लाया था। उसने उस पर पानी थोड़ा छिड़का और उस आदमी की नाक के पास वह झोला रख दिया। उसने गहरी सांस ली, आंख खोली और उसने कहा, दिस इ.ज रियल परफ्यूम--यह है असली सुगंध!
स्वाभाविक, हमें वही बात ठीक मालूम पड़ती है, जिसके हम आदी हैं। हमें वही सुगंध मालूम पड़ती है, जिसे हम जानते हैं। चूंकि सभी मनुष्य जीवन की कला में दीक्षित नहीं है, और पराजित हो जाते हैं। इसलिए जब कोई पराजित व्यक्ति खड़े होकर कहता है, असार है सब, व्यर्थ है सब, छोड़ देने जैसा है सब, तो हाथ हमारे भी उठ जाते हैं कि आप ठीक कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हैं। जीवन की कला ही नहीं सिखाई गई!
जीवन एक कला है।
जन्म के साथ ही जीवन नहीं मिल जाता। जीवन एक लंबा प्रशिक्षण है। और सूक्ष्मतम कला है जीवन की।
इस जीवन-कला का दूसरा सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूं।
जो भी है, जो भी उपलब्ध है, इंद्रियों से जो भी आता है, उस सबको अत्यंत आनंद से, अत्यंत ग्रेटिट्यूड से स्वीकार करें और आप पाएंगे कि जीवन से आपका संबंध होना शुरू हो गया है।
हमारे भाव तोड़ते हैं। हमारे भाव जोड़ सकते हैं। हमारा दुर्भाव तोड़ देता हैं, हमारा सदभाव जोड़ देता है। जीवन के प्रति सदभाव! मैं उन सारे लोगों को परमात्मा के शत्रु कहता हूं, एनीमीज ऑफ गॉड, जो जीवन के प्रति दुर्भाव सिखाते हैं।
कल ही एक मित्र आए। उन्होंने कहा कि मैं तो साठ बरस का हो गया हूं, लेकिन अब भी सुंदर स्त्री को देखता हूं तो बेचैन और परेशान हो जाता हूं। जिंदगी भर मैंने कोशिश की है कि अपने मन को स्त्री से अलग कर लूं, अलग कर लूं, अलग कर लूं। लेकिन इस उम्र में भी स्त्री मेरा पीछा कर रही है!
मैंने कहा, वह पीछा करती ही चली जाएगी। वह आप कब्र में चले जाएंगे और
वह पीछा करती चली जाएगी। आप पीछा करवा रहे हैं। जीवन की कला स्त्री से भागना नहीं सिखाती, सौंदर्य से आंखें फेरना नहीं सिखाती, बल्कि इस जिज्ञासा में और ऊपर उठ आती कि जो सौंदर्य दिखाई पड़ रहा है, वह कहां से आ रहा है? वह सौंदर्य क्या है?
और अगर एक स्त्री में भी सौंदर्य दिखाई पड़ा हो--दिखाई पड़ सकता है। फूल में दिखाई पड़ सकता है तो स्त्री में क्यों नहीं, पुरुष में क्यों नहीं, आंखों में क्यों नहीं, शरीर में क्यों नहीं? क्योंकि फूल भी एक शरीर है,

चांद भी एक शरीर है, तारे भी एक शरीर हैं, सागर भी एक शरीर है, वृक्ष भी एक शरीर है। तो आदमी के शरीर का ही कसूर क्या है?
लेकिन अगर सौंदर्य का विरोध न होता, अगर निंदक की दृष्टि न होती, तो शायद उस सौंदर्य में और गहरे प्रवेश होता। वह सौंदर्य की ध्वनि पर सवार होकर मन और आगे जाता और उस जगह पहुंच जाता, जहां से सारा सौंदर्य आता है। उस अरूप पर पहुंच जाता, जहां से जीवन के सारे आनंद और सारी खुशियां आती हैं। तो शायद फिर एक स्त्री मंदिर बन जाती, उसके भीतर परमात्मा दिखाई पड़ जाता। फिर चाहे एक पुरुष प्रभु बन जाता, उसके भीतर परमात्मा दिखाई पड़ जाता।
तो मैं नहीं कहता हूं कि आप भागें इस सौंदर्य से, रूप से, संगीत से, सुगंध से, सुवास से, स्वाद से-किसी से भी मत भागें। सभी के भीतर खोज करें कि जो आकर्षित कर रहा है, जरूर वहां कहीं भीतर परमात्मा होगा।
जहां भी आकर्षण है, जहां भी ग्रेविटेशन है, स्मरण रखें कि वहां कहीं कोई परमात्मा का केंद्र होगा, अन्यथा कोई आकर्षण संभव नहीं। तो आकर्षण को सूचना समझें और भीतर और भीतर और गहरे और गहरे प्रवेश करें। चित्त को जाने दें और धीरे से आप पाएंगे कि सारी खबरें उसकी खबरें हैं। फूल से भी वही झांकता है, सागर से भी वही, चांद-तारों से भी वही, आदमी से भी वही, स्त्री से भी वही, बच्चों से भी वही-सबसे वही झांकता है। उसकी खोज करनी है तो द्वार खुले होने चाहिए। रिसेप्टिविटी, ग्राहकता, पूर्ण होनी चाहिए कि सब तरफ से जो संदेश आएगा, उसे मैं अपने हृदय तक ले जाने को हमेशा तैयार हूं।
यह मनुष्य-जाति बिल्कुल दूसरी मनुष्य की जाति हो सकती है। यह पूरी ह्युमैनिटी एक ट्रांसफार्मेशन से गुजर सकती है। एक रूपांतरण हो सकता है। लेकिन नहीं, निंदकों का प्रभाव हमारे ऊपर बहुत ज्यादा है। जीवन के प्रशंसकों का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं!
तो यह दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं। इन तीन दिनों में तो आप प्रयोग करेंगे ही। द्वार खोलें मन का। समस्त आकर्षण के लिए द्वार खोल दें। जीवन के समस्त स्वाद के लिए द्वार खोल दें। और जीवन के प्रत्येक अनुभव में आनंद की गहरी से गहरी खोज और आत्मलीनता खोजें, तल्लीनता खोजें और जीवन की जो मधु-वर्षा हो रही है, उसमें डूब जाएं, उसमें एक हो जाएं, उससे जुड़ जाएं, उसके और अपने बीच कोई फासला न रखें। जैसा एक सूखा पत्ता हवाओं में उड़ता है, हवाएं पूरब ले जाती हैं तो पूरब चला जाता है, हवाएं पश्चिम ले जाती हैं तो पश्चिम चला जाता है। हवाएं जमीन पर गिरा देती हैं तो जमीन पर गिर जाता है, हवाएं आकाश में उठा देती हैं तो बादलों में उठ जाता है।
एक सूखे पत्ते हो जाएं और जीवन के सारे रस, जीवन का सारा आनंद, जीवन के सारे अनुभवों को गुजरने दें। कोई बाधा न डालें; कहीं कोई बैरियर खड़ा न करें, कहीं कोई दीवाल न बनाएं। जीवन के सागर में बह जाएं। तो, स्मरण रखें कि वह सागर अंततः परमात्मा तक ले जाने वाला बन जाता है।
जीवन में जो बहते हैं, वे तो कभी पहुंच जाते हैं। लेकिन जीवन के विरोध में पीठ करके, जो खड़े हो जाते हैं, वे न कभी पहुंचे हैं, न कभी पहुंच सकते हैं, न कभी पहुंच सकेंगे। यह दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं।
तीसरे सूत्र पर कल सुबह हम बात करेंगे। इसे थोड़ा प्रयोग करें तो ही पता चलेगा। वह जो भीतर निंदक बैठा है, वह बहुत इनकार करेगा, कि बहुत खतरा हो सकता है। वह जो भीतर कंडेमनेशन बैठा है, वह कहेगा, भूल कर मत पड़ना, इसमें तो मुश्किल हो जाएगी, इसमें तो सब गड़बड़ हो जाएगा, इसमें तो साधना सब भ्रष्ट हो जाएगी।
वह निंदक बहुत जोर से कहेगा भीतर, क्योंकि वह आज का नहीं है। वह हमारे कलेक्टिव माइंड का हिस्सा है, वह हमारे समूह-मन का हिस्सा है, वह कोई पांच हजार वर्ष से हमारे भीतर बैठा है और उसकी वजह से जीवन एकदम, एकदम विषाक्त पाय.जनस हो गया। जीवन की कोई खुशी अंगीकृत नहीं रही, कोई गीत अंगीकृत नहीं रहा। लाइफ निगेटिव है, वह हमारा जो दृष्टिकोण है।
और लाइफ अफरमेशन चाहिए। रिवरेंस फॉर लाइफ चाहिए। जीवन के प्रति आदर-सम्मान, जीवन के प्रति प्रेम, अनुग्रह का भाव चाहिए।
धन्य हैं वे लोग, जो जीवन के प्रति अनुग्रह से भरते हैं, क्योंकि जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सुंदर है, शुभ है, वह सभी उनको उपलब्ध हो जाता है।

इसके बाद हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे, तो दो-चार बात समझ लें। फिर
हम अलग-अलग ध्यान के लिए बैठें। मेरे लिए तो ध्यान भी जीवन की स्वीकृति है, अंगीकार है। ये हवाएं हैं, ये आएंगी, ये गुजर जाएंगी। आवाजें हैं, पैदा होंगी, विलीन हो जाएंगी। सागर का गर्जन चलता रहेगा। कोई पक्षी बोलेगा। इस सबको परमात्मा का आशीर्वाद समझ कर अंगीकार कर लेना है। इसे स्वीकार कर लेना है।
अब तक ध्यान के नाम से जो भी सिखाया गया है, वह रेसिस्टेंस है, वह प्रतिरोध है। अब तक यही सिखाया गया है कि कोई आवाज न सुनाई पड़े, चींटी काटे तो पता न चले। पत्थर की तरह हो जाना है, कुछ पता न चले! ये मर जाने की प्रक्रियाएं है। आदमी मर जाता है, तब चींटी भी काटती है तो पता नहीं चलता। हवा भी चलती है तो पता नहीं चलता है। बच्चा भी रोता है तो पता नहीं चलता। जिंदा आदमी को तो पता चलेगा और जितना ज्यादा जिंदा होगा, उतना ज्यादा पता चलेगा, उतनी सेंसिटिविटी बढ़ जाएगी उसकी, उतनी उसकी संवेदना बढ़ जाएगी। जितना शांत होगा, जितना जीवंत होगा--जरा सी ध्वनि और उसके प्राणों में आंदोलन होगा। जरा सी आवाज उसे सुनाई पड़ेगी। एक सुई गिर जाएगी तो भी उसे सुनाई पड़ेगी। जीवन का लक्षण तो संवेदना है। मृत्यु का लक्षण संवेदना नहीं है।
लेकिन अब तक हमको इस तरह की बातें ही सिखाई गईं कि जैसे डेड हो जाओ, मुर्दे की तरह हो जाओ। नहीं, मैं आपको और भी जीवंत देखना चाहता हूं, इतना जीवंत कि वृक्ष का एक छोटा सा पत्ता भी हिले तो पता चले।
अब तक रेसिस्टेंस बताया गया है ध्यान का अर्थ है--प्रतिरोध! अपने को दबाओ, हटाओ, कुछ सुनाई न पड़े, कुछ ज्ञात न हो, सब तरफ से अपने को बंद कर लो-एक क्लोजिंग।
मैं कह रहा हूं, ध्यान है एक ओपनिंग--द्वार का खोलना, बंद करना नहीं।
खोल दें द्वार और जो भी आता है, चुपचाप देखते रहें। बस, एक साक्षी रह जाएं, एक विटनेस रह जाएं। जितने शांत होंगे, जितने साक्षी होंगे, उतना ही पाएंगे कि जीवन के द्वार टूटते जा रहे हैं। एक मेल होता जा रहा है, सब जुड़ता जा रहा है। धीरे-धीरे पता चलेगा, सारी परिधि टूटती जा रही है। सारी सीमाएं गिरती जा रही हैं और असीम के साथ मिलन होता चला जा रहा है।
असीम के साथ मिलन है समाधि, और असीम की तरफ बढ़ने के प्रयास का नाम है ध्यान।
लेकिन असीम की तरफ वही बढ़ सकता है, जो सारा विरोध छोड़ दे, क्योंकि विरोध सीमा बनाता है। रेसिस्टेंस सीमा बनाता है। कोई रेसिस्टेंस नहीं। सब स्वीकार। एक स्वीकृति भर मन में रह जाए, टोटल एक्सेप्टेंस रह जाए मन में। सब स्वीकृत है और मैं मौन बैठा हुआ हूं, देख रहा हूं, देख रहा हूं; जान रहा हूं, केवल साक्षी हूं।
अब हम यहां बैठेंगे। सब एक दूसरे से थोड़े फासले पर हो जाएं। ताकि यह
जो थोड़ा सा अवसर मिला है, सभी के जीवन में नहीं है। आ गए हैं तीन दिन तो उसका उपयोग हो जाए। थोड़े फासले पर हो जाएं। थोड़े, एक दूसरे को कोई छूता हुआ न हो--चुपचाप बिना कोई बात किए।
कहीं भी बैठ जाएं--चुपचाप आराम से। कहीं भी बैठ जाएं। चुचाप आराम से बैठ जाएं जैसा सुविधापूर्ण हो वैसे बैठ जाएं। वृक्ष से टिकना तो टिक जाएं, जैसा मन हो, जैसी मौज हो वैसे चुचाप शरीर को शांत छोड़ कर बैठ जाएं। फिर आंख आहिस्ता से बंद कर लें। धीरे से पलक छोड़ दें। अपने आप पलक बंद हो जाएं। आंख बंद कर ली हैं। शांत बैठ गए हैं। अब जीवन के प्रति सारा विरोध छोड़ दें। मन के द्वार खुले छोड़ दें।
हवाएं आएंगी और मन के द्वार से गुजर जाएंगी। कोई पक्षी बोलेगा, आवाज गूंजेगी और निकल जाएगी। आप केवल साक्षी रह गए हैं--चुपचाप बैठे देखते रहें... देखते रहें... सुनते रहें... सुनते रहें... बस सुनते रहें... एक साक्षी... एक विटनेस... और कुछ भी नहीं।
धीरे-धीरे मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। सुनें... हवाओं को सुनें... सागर
के गर्जन को सुनें... प्रभु की बहुत आवाजें हैं... सुनें। यह पक्षी बोलने लगा... सुनते रहें... सुनते रहें और मन शांत होता जाएगा... सुनते रहें... दस मिनट के लिए बिल्कुल सुनते रह जाएं।

सब मिट जाएगा... हवाएं रह जाएंगी... पक्षी रह जाएंगे... आप मिट जाएंगे... जगत रह जाएगा... आप नहीं रह जाएंगे। जीवन रह जाएगा... आप नहीं रह जाएंगे... छोड़ दें... सब चुचाप सुनते रह जाएं। दस मिनट के लिए सुनें--सुनते रहें... एक साक्षी भर... मन धीरे-धीरे शांत हो जाएगा... मन बिल्कुल सन्नाटे से भर जाएगा... मन बिल्कुल गहरा शांत हो जाएगा... मन शांत हो गया... सुनते रहें... सुनते रहें... सुनते रहें...
हवाएं रह गईं... सागर का गर्जन रह गया... आप कहां हैं? हवाएं रह गईं... सागर का गर्जन रह गया... आप कहां हैं? सुनते रहें... सुनते रहें... धीरे-धीरे सब शांत होता जा रहा है...
मन शांत हो गया... आप बिल्कुल मिट गएं हैं... मन शांत हो गया... मन शांत हो गया है... मन बिल्कुल शांत हो गया... एक साक्षी भर रह गए... मात्र एक साक्षी रह गए... सुनते रहें... सुनते रहें... मन और गहरा शांत होता चला जाएगा...
हवाएं रह गईं... सागर का गर्जन रह गया, पक्षियों की ध्वनियां रह गईं...
आप मिट गए।
धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। दुलारी... उसे... ।... धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। फिर आहिस्ता से आंख खोल लें... धीरे से आंख खोल लें।

सुबह की बैठक समाप्त हुई।

शून्य की नाव
पांचवां प्रवचन

जीवन जीओ अतिरेक में
(4 मई 1968 रात्रि)

प्रिय आत्मन्!
जीवन-देवता के प्रति समर्पण का भाव, स्वीकार, सम्मान और श्रद्धा की मनःस्थिति के संबंध में सुबह थोड़ी सी बातें मैंने कहीं हैं। उस संबंध में बहुत से प्रश्न आए हैं। उन पर अभी बात करनी है।
जीवन सदा से अस्वीकृत रहा है! जीवन की श्रद्धा और सम्मान के लिए न तो कभी कोई पुकार की गई है, न कभी कोई आह्वान किया गया है। जीवन को छोड़ देने, जीवन से पलायन करने को, जीवन को तोड़ देने और नष्ट कर देने को बहुत-बहुत रूपों में चेष्टाएं जरूर की गयी हैं। या तो वे लोग पृथ्वी पर प्रभावी रहे हैं, जिन्होंने दूसरों के जीवन को नष्ट करने की कोशिश की हो--राजनीतिज्ञ, सेनापति, युद्धखोर। या जो लोग दूसरों का जीवन नष्ट करने में नहीं लगे हैं, तो वे दूसरी प्रक्रिया में लग गए, वे अपने ही जीवन को नष्ट करने का प्रयास करते रहे--तथाकथित धार्मिक, तथाकथित साधु-संन्यासी।
दो प्रकार की हिंसा चलती रही है। या तो दूसरे का जीवन नष्ट करो या अपना जीवन नष्ट करो। या तो दूसरों को समाप्त करो या स्वयं को समाप्त करो। जीवन की दोनों ही अर्थों में हत्या होती रही है। जीवन का परिपूर्ण सम्मान आज तक भी मनुष्य के मन में प्रतिष्ठित नहीं हो पाया। स्वभावतः जब मैं कहूं कि जीवन ही देवता है, जीवन ही प्रभु है तो अनेक प्रश्न उठ आने स्वाभाविक हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि अगर जीवन ही प्रभु है तो फिर जीवन से छुटकारा
और आवागमन से मुक्ति और मोक्ष इस सबका क्या होगा? जीवन को तो बंधन कहा गया है और मैं जीवन को ही प्रभु कह रहा हूं?
निश्चित ही आज तक जीवन को बंधन ही कहा गया है। लेकिन जीवन बंधन नहीं है। जो लोग जीवन को जीने की कला नहीं जानते, उनके लिए जीवन जरूर बंधन हो जाता है।
एक अजनबी देश से कुछ मित्र यात्रा कर रहे थे। वे भूखे थे और फलों की एक दुकान पर रुके। लेकिन जो फल वहां बिक रहे थे, अपरिचित थे। अजनबी देश था, नहीं जानते थे क्या हैं वे फल। नारियल बिकते थे। लेकिन वे लोग जिस देश से आते थे, वहां नारियल नहीं होते थे। उन्होंने पूछाः यह क्या है? दुकानदार ने कहाः बहुत, बहुत स्वादिष्ट, बहुत मधुर, बहुत शक्तिवर्धक फल हैं। उन्होंने उन फलों को खरीद लिया। दुकानदार ने प्रशंसा में यह भी कहा कि बड़े-बड़े शहंशाह भी, बड़े-बड़े सम्राट भी मेरी ही दुकान से इन फलों को खरीदते हैं।
फिर वे फलों को लेकर आगे बढ़ गए। गांव के बाहर वे रुके और उन्होंने फलों को खाने की चेष्टा की, लेकिन नारियलों से वे परिचित नहीं थे। वे जिन फलों से परिचित थे, उन पर नारियल जैसी कड़ी खोल नहीं होती थी। उन्होंने नारियल को ऊपर से ही खाना शुरू किया। बहुत परेशान हो गए। तिक्त हो गया मुंह। कहीं कोई स्वाद न दिखाई पड़ा। दांत गपाना भी कठिन था, मुश्किल था। फिर उन्होंने एक-एक करके वे फल फेंक दिए और कहा, बड़े मूढ़ हैं इस देश के सम्राट और शहंशाह, जो इन फलों को खाते हैं। इन फलों में न कोई स्वाद है, न कोई रस है, न कोई अर्थ प्रतीत होता है। कैसे पागल हैं इस देश के लोग!
उन फलों को फेंककर वे भूखे ही आगे बढ़ गए और अपने देश में जाकर उन्होंने बहुत प्रचार किया कि हम एक मूर्खों के एक देश से गुजर कर आ रहे हैं। वहां लोग पत्थरों जैसे फलों को खाते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं! उन बेचारों को पता भी नहीं था कि फल वे पत्थर जैसे नहीं थे, लेकिन खाने
की विधि उन्हें ज्ञात न थी। खाने की विधि अज्ञात थी।

जीवन के फल पर भी जो खाने की विधि से, जीवन को भोगने की विधि से; जीवन
के रस के मार्ग से, जीवन के छंद को अनुभव करने के मार्ग से अपरिचित हैं, उन्हें जीवन लोहे की जंजीर प्रतीत होता तो आश्चर्य नहीं।
जीवन जंजीर नहीं है और जीवन से भिन्न कोई मोक्ष नहीं है।
जीवन को ही जो उसकी परिपूर्णता में जानने में समर्थ होता है, वह जीवन
के मध्य, जीवन के बीच ही मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है।
यह हो भी नहीं सकता है कि जीवन और मोक्ष में कोई विरोध हो। यह हो भी नहीं सकता कि जगत में कोई दो विरोधी सत्ताएं हों। यह हो भी नहीं सकता कि प्रभु और संसार में बुनियादी शत्रुता हो। कोई गहरी मैत्री का सेतु है। कोई एक ही सब संसार में, मोक्ष में प्रकट हो रहा है--देह में, आत्मा में; रूप में, अरूप में।
लेकिन हमारी असफलता, जीवन के फल को चखने की हमारी सीमा, हमारे लिए बंधन बनती रही है। जीवन को जीने की कला ही हमने नहीं सीखी। बल्कि कला न जानने से जब जीवन तिक्त और बेस्वाद लगा तो हमने जीवन को ही तोड़ देने की कोशिश की, अपने को बदलने की नहीं! हमने उस पागल की तरह व्यवहार किया है, शायद उस पागल के संबंध में आपने सुना हो। न सुना हो तो मैं कहूं और शायद आप पहचान भी लें कि वह पागल कौन है।
एक पागल आदमी था। वह अपने को बहुत ही सुंदर समझता था। जैसा कि सभी पागल समझते हैं, वैसा वह समझता था कि पृथ्वी पर उस जैसा सुंदर और कोई भी नहीं है। यही पागलपन के लक्षण हैं। लेकिन वह आईने के सामने जाने से डरता था। और जब कभी कोई उसके सामने आईना ले आता तो तत्क्षण आईने को फोड़ देता था। लोग पूछते, क्यों? तो वह कहता कि मैं इतना सुंदर हूं और आईना कुछ ऐसी गड़बड़ करता है कि आईना मुझे कुरूप बना देता है! आईना मुझे कुरूप बनाने की कोशिश करता है! मैं किसी आईने को बरदाश्त नहीं करूंगा, मैं सब आईने तोड़ दूंगा! मैं सुंदर हूं, और आईने मुझे कुरूप करते हैं! वह कभी आईने में न देखता। लोग आईना ले आते तो तत्क्षण तोड़ देता!
मनुष्य भी उस पागल की तरह व्यवहार करता रहा है। नहीं सोचता कि आईना वही दिखाता है, जो मेरी तसवीर है। आईना वही बताता है, जो मैं हूं। आईने को कोई प्रयोजन भी नहीं कि मुझे कुरूप करे। आईने को कोई मेरा पता भी नहीं। मैं जैसा हूं, आईना वैसा बता देता है। लेकिन बजाय यह देखने के कि मैं कुरूप हूं, आईने को तोड़ने में लग जाता हूं!
संसार को छोड़ कर भाग जाने वाले लोग आईने को तोड़ने वाले लोग हैं। अगर संसार दुखद मालूम पड़ता है, तो स्मरण रखना कि संसार एक दर्पण से ज्यादा नहीं। वही दिखाई पड़ता है, जो हम हैं।
अगर दुख हमारे जीवन की व्यवस्था है तो संसार में दुख दिखाई पड़ेगा।
अगर चिंता हमारे चित्त की व्यवस्था है तो संसार में चिंता झलकेगी।
अगर कांटे हमने इकट्ठे कर रखे हैं तो संसार में कांटे दिखाई पड़ेंगे।
संसार हमारी प्रतिध्वनि है। जो हमारे भीतर है, वही प्रतिध्वनित हो उठता है, वही री-ईको हो उठता है।
लेकिन नहीं, यह देखने को हम राजी नहीं! हम कहते हैं, संसार बंधन है। हम कहते हैं, संसार दुख है। हम कहते हैं, संसार असार है, छोड़ दें, तोड़ दें, मुक्त हो जाएं, बाहर हो जाएं।
किससे बाहर होंगे? दर्पण को तोड़ कर कोई मुक्त होता है? प्रतिध्वनियों
को बंद कर कोई मुक्त होता है?
मुक्त होना है तो स्वयं को बदलना पड़ता है, न कि जीवन को तोड़ना। मुक्त होना हो तो स्वयं को आमूल बदलना पड़ता है। और स्वयं को जो आमूल बदलने को तैयार हो जाता है, वह पाता है कि जीवन एक धन्यता है, एक कृतार्थता है। वह परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भर उठता है--इतना सुंदर है जीवन, इतना अदभुत है, इतना रसपूर्ण, इतने छंद से भरा हुआ, इतने गीतों से, इतने संगीत से। लेकिन उस सबको देखने की क्षमता और पात्रता चाहिए। उस सबको देखने की आंखें, सुनने के कान, स्पर्श करने वाले हाथ चाहिए।
और भी कुछ मित्रों ने पूछा है कि मैंने सुबह जीवन की कला पर कुछ कहा।
मैं और ठीक से कहूं कि जीवन की कला से मेरा क्या प्रयोजन है।

जीवन की कला से मेरा यही प्रयोजन है कि हमारी संवेदनशीलता, हमारी पात्रता, हमारी ग्राहकता, हमारी रिसेप्टिविटी इतनी विकसित हो कि जीवन में जो सुंदर है, जीवन में जो सत्य है, जीवन में जो शिव है, वह सब--वह सब हमारे हृदय तक पहुंच सके। उस सबको हम अनुभव कर सकें।
लेकिन हम जीवन के साथ जो व्यवहार करते हैं, उससे हमारे हृदय का दर्पण
न तो निखरता, न निर्मल होता, न साफ होता; और गंदा होता, और धूल से भर जाता है। उसमें प्रतिबिंब पड़ने और भी कठिन हो जाते। जिस भांति जीवन को हम बनाए हैं--सारी शिक्षा, सारी संस्कृति, सारा समाज मनुष्य के व्यक्तित्व को ठीक दिशा में नहीं ले जाता है। बचपन से ही गलत दिशा शुरू हो जाती है। और वह गलत दिशा जीवन भर, जीवन से ही परिचित होने में बाधा डालती रहती है। उस संबंध में दो-चार बातें समझ लेनी उपयोगी होंगी। उस संबंध में ही प्रश्न पूछे गए हैं, वे भी हल हो सकेंगे।
पहली बात, जीवन को अनुभव करने के लिए एक प्रामाणिक चित्त, एक आथेंटिक माइंड चाहिए। हमारा सारा चित्त औपचारिक है, फार्मल है, प्रामाणिक नहीं है। न तो हम प्रामाणिक रूप से कभी प्रेम किए हैं, न प्रामाणिक रूप से कभी क्रोध किए हैं, न प्रामाणिक रूप से कभी हमने घृणा की है, न प्रामाणिक रूप से हमने कभी क्षमा की है।
हमारे सारे चित्त के आवर्तन, हमारे सारे चित्त के रूप औपचारिक हैं, झूठे हैं, मिथ्या हैं। अब मिथ्या चित्त को लेकर जीवन के सत्य को कोई कैसे जान सकता है? सत्य चित्त को लेकर ही जीवन के सत्य से संबंधित हुआ जा सकता है। हमारा पूरा माइंड, हमारा पूरा चित्त, हमारा पूरा मन मिथ्या और औपचारिक है। इसे समझ लेना उपयोगी है।
सुबह ही आप अपने घर के बाहर आ गए हैं और कोई राह पर दिखाई पड़ गया है और
आप नमस्कार कर लिये हैं। और आप कहते हैं उसे मिल कर कि बड़ी खुशी हुई, आपके दर्शन हो गए। लेकिन मन में आप सोचते हैं कि इस दुष्ट का सुबह ही सुबह चेहरा कहां से दिखाई पड़ गया!
यह अनआथेंटिक माइंड है, यह गैर-प्रामाणिक मन की शुरुआत हुई। चौबीस घंटे हम ऐसे दोहरे ढंग से जीते हैं, तो जीवन से कैसे संबंध होगा? फिर दोष देना जीवन को! बंधन पैदा होता है दोहरेपन से। जीवन में कोई बंधन नहीं है। बंधन पैदा होता है मनुष्य के दोहरेपन से। हम दोहरे ढंग से जी रहे हैं। भीतर कुछ है, बाहर कुछ है। दोहरा ढंग भी होता तो भी ठीक है। हम हजार ढंग से जी रहे हैं! एक ही साथ हजार बातें हमारे भीतर चल रही हैं! हमारे व्यक्तित्व में कोई प्रामाणिकता, कोई भी सचाई नहीं है। सारा व्यक्तित्व झूठ मालूम होता है। सारा व्यक्तित्व ही अभिनय का, एक्टिंग का मालूम होता है!
किसको धोखा दे रहे हैं लेकिन आप? किसके सामने यह अभिनय चल रहा है? किसी और को धोखा नहीं होगा। इस धोखा देने में स्वयं को ही जानने से वंचित रह जाएंगे, जीवन से संबंधित होने से वंचित रह जाएंगे। सब तरह का धोखा है, जो आदमी दे रहा है! सबसे गहरा धोखा मन के तलों पर है, जहां हमारी कोई भी चीज सच नहीं रह गई है!
कभी आपने सच में ही किसी को प्रेम किया है? समझदार लोग कहते हैं, प्रेम नासमझ करते हैं। समझदार लोग प्रेम की बातें करते हैं, अभिनय करते हैं, प्रेम वगैरह कभी नहीं करते। व्यावहारिक लोग, जो प्रेक्टिकल लोग हैं, वे कभी प्रेम-व्रेम सिर्फ प्रेम की बातें करते हैं! हमारे सारे भाव बातों तक सीमित हो गए हैं! कभी कोई जीवन की कोई भी अनुभूति ऐसी तीव्रता से हमने नहीं पकड़ ली हैं, जिसके लिए हम जी जाएं या जिसके लिए हम मर जाएं।
कोई आथेंटिक, कोई प्रामाणिक दांव हमारे जीवन में नहीं है! क्रोध भी हम करते हैं तो पोच, इंपोटेंट। उस क्रोध में भी कोई बल नहीं होता, कोई शक्ति नहीं होती। जो क्रोध भी नहीं कर सकता प्रामाणिक रूप से, वह क्षमा कैसे कर सकेगा? क्षमा भी वही कर सकता है, जो क्रोध करने में समर्थ हो। मित्र भी वही हो सकता है, जो शत्रु होने में समर्थ हो।
लेकिन न हम शत्रु हो सकते हैं, न हम मित्र हो सकते हैं! हम बिल्कुल बीच में खड़े रह गये हैं! हम बिल्कुल त्रिशंकु हो गए! हमारे जीवन की कोई भाव-दशा नहीं रह गई!

एक-एक ग्रामीण युवक, पुराने दिनों की बात है, क्योंकि अब तो दुनिया में ग्रामीण कोई भी नहीं रह गया है। ग्राम रह गए हैं, ग्रामीण कोई भी नहीं रह गया है। आदमी सब शहरी हैं। एक ग्रामीण युवक ने विवाह किया। यह अमरीका के कोई दो सौ, ढाई सौ वर्ष पहले किसी गांव की घटना है। वह विवाह किया और अपनी नववधू, पत्नी को लेकर अपनी घोड़ा-गाड़ी में सवार होकर गांव की तरफ वापस लौटा। रास्ते में घोड़ा एक जगह ठिठक गया, रुक गया। उसने बहुत चलाने की कोशिश की, लेकिन नहीं चला। उसने घोड़े से कहाः दिस इ.ज वन्स, यह एक बार हुआ। उसकी पत्नी कुछ भी न समझी कि घोड़े से क्या बात की जा रही है। फिर घोड़ा थोड़ी दूर चला और फिर ठिठक गया। उस जवान ने कहाः दिस इ.ज ट्वाइस, यह दुबारा हो गई बात।
उसकी पत्नी फिर भी चुप रही।
घोड़ा तीसरी बार ठिठका। उसने कहाः दिस इ.ज थ्राइस। उठा, बंदूक उठा कर घोड़े को गोली मार दी! उसकी पत्नी तो हैरान रह गई। उसने उसे जोर से धक्का मारा और कहा, यह क्या क्रूरता करते हो? यह क्या पागलपन करते हो?
उसने जवाब दियाः दिस इ.ज वन्स। उसने कहाः यह पहली बार हुआ।
उसकी पत्नी तो दंग रह गई।
उस जवान ने कहाः दो मौके और बच गए।
उसकी पत्नी ने लिखा है कि मैंने पहली बार उस व्यक्ति की तरफ देखा, जिसका क्रोध इतना ज्वलंत हो सकता है और मुझे पहली दफा उसके व्यक्तित्व में एक बल और एक शक्ति और एक तेज का दर्शन हुआ।
नहीं आपसे कह रहा हूं कि किसी को गोली मार दें लेकिन उसकी पत्नी ने कहा कि वह व्यक्ति इतना ही प्रेम भी कर सका। मनुष्य-जाति को, उसके जीवन को विषाक्त कर देने वाले, जो शिक्षक हुए हैं, उन्होंने सब तरफ से इंपोटेंट कर दिया है, सब तरफ से पंगुता सिखाई है, सब तरफ से-जीवन के समस्त तीव्र भावों पर सब तरफ से रोक लगा दी है, सब तरफ से कैद कर दिया आदमी को! तब उसके भीतर कोई भी चीज बलशाली शेष नहीं रह गई है।
अकबर के दरबार में एक सुबह। एक घटना घट गई। दो राजपूत युवक आए हैं। नंगी तलवारें उनके हाथों में हैं। और अकबर के सिंहासन के सामने वे खड़े हो गए और उन्होंने कहाः हम दो राजपूत जवान हैं, हम दोनों जुड़वां भाई हैं और हम दोनों तलाश में निकले हैं, नौकरी चाहिए।
अकबर ने पूछाः तुम्हारी योग्यता क्या है?
तुम्हारी योग्यता क्या है?
उन्होंने कहाः हम दो बहादुर हैं, और कोई हमारी योग्यता नहीं है।
अकबर ने कहाः कोई प्रमाणपत्र, कोई सर्टिफिकेट लाए हो?
उन दोनों की आंखें ऐसे चमक उठीं जैसे दो अंगारे। उनकी तलवारें म्यानों के बाहर आ गईं और एक दूसरे की छाती में एक क्षण में प्रविष्ट हो गईं! एक क्षण बाद दो लाशें पड़ीं थीं और खून के फव्वारे बह गए थे!
अकबर तो घबड़ाया, उसके तो हाथ-पैर कंप गये। उसने अपने राजपूत सेनापति
को बुलाया और कहा कि यह क्या हुआ? मैंने तो छोटी सी बात कही थी कि कोई प्रमाणपत्र लाए हो बहादुरी का?
वह राजपूत सेनापति बोलाः गलत बात कही थी आपने। राजपूत से कहीं ऐसा पूछना होता है--बहादुरी का प्रमाणपत्र! और बहादुरी के कोई प्रमाणपत्र होते हैं सिवाय इसके कि कोई जिंदगी दांव पर लगा कर दिखा दे! और क्या प्रमाणपत्र हो सकता है? कोई कागज के सर्टिफिकेट होते हैं बहादुरी के? उन दोनों ने दिखा दिया कि बहादुरी का क्या मतलब होता है। एक ही मतलब होता है कि आदमी मौत के सामने खड़ा हो सकता है निर्भय। और कोई मतलब नहीं होता है बहादुरी का। और बहादुरी का कोई प्रमाणपत्र नहीं होता। और जो आदमी बहादुरी का प्रमाणपत्र लिए फिरता हो, उस आदमी से ज्यादा कायर कोई आदमी नहीं हो सकता है। असल में प्रमाणपत्र कायर ही ढोते हैं और कोई प्रमाणपत्र नहीं लिए घूमता है।
अकबर ने अपने संस्मरणों में लिखवाया है कि वह बात तो मुझे याद रह गई। मैंने तो जिंदा आदमी देखे थे। एक क्षण में, एक तीव्रता में--एक प्रामाणिक जीवन देखा था, एक क्षण में वह चमक देखी थी, जो आदमी की चमक है।

लेकिन हम सबके जीवन से आदमी की चमक विलीन हो गई! न कभी वहां क्रोध ऐसा चमकता है कि बिजली की लौ पैदा हो जाए, न कभी प्रेम। वहां कोई चमक ही नहीं है। हम बिल्कुल बिना चमक के, बिना विद्युत के, बिना बल के, बिना शक्ति के, लोग होते चले गए हैं।
जीवन से हमारा संबंध नहीं हो सकता है। जीवन से संबंधित होने के लिए शास्त्रों का अध्ययन नहीं, जीवन से संबंधित होने के लिए मंदिरों की प्रार्थनाएं नहीं; जीवन से संबंधित होने के लिए--इंटेंसिटि, तीव्रता का जीवन चाहिए।
एक ही प्रार्थना है जीवन-देवता के मंदिर में--वह है इंटेंस लिविंग, वह
है तीव्र जीवन, वह है उद्दाम जीवन; वह है बल, शक्तिशाली जीवन; ऊर्जा से भरा जीवन।
हम सब बिना ऊर्जा के जीते चले जाते हैं! चलते नहीं हैं रास्तों पर, जैसे धक्के खाते हैं!
मेरी दृष्टि में जीवन की कला की पहली शिक्षा जो हो सकती है, वह यह है
कि हम जीवन को कितनी तीव्रता से ले सकें। एक-एक क्षण को तीव्रता से ले सकें। जैसे एक-एक क्षण ही हमारा जीवन दांव पर लगा हो। कौन जानता है, एक क्षण के बाद जीवन आए न आए, श्वास आए न आए।
सचाई यही है कि एक-एक क्षण जीवन दांव पर लगा हुआ है। अभी आप यहां बैठे हैं इतनी सुस्ती से, इतने आराम से। अगर आपको खबर की जाए कि बस घंटा भर और है आपके जीवन के लिए--वह घंटा क्या होगा? या आपको कहा जाए कि बस एक क्षण और है, यह अंतिम क्षण है। उस क्षण में आप कैसे जीएंगे?
सचाई भी यही है कि एक आदमी को एक क्षण से ज्यादा जीवन मिला हुआ नहीं है। दूसरे क्षण का कोई भरोसा नहीं है। वह आए और न आए। जो क्षण मेरे हाथ में है, वही मेरे हाथ में है। अगर उस क्षण को मैं अपनी पूरी शक्ति से नहीं जीता हूं, तो मैं जीवन की कला कभी नहीं सीख पाऊंगा। अगर मैं भोजन कर रहा हूं, तो कौन जानता है--दुबारा भोजन कर सकूंगा कि नहीं। अगर मैं किसी को प्रेम कर रहा हूं तो कौन जानता है, दुबारा यह प्रेम का क्षण आएगा या नहीं। अगर मैं आकाश के तारे देख रहा हूं तो कौन कह सकता है कि दुबारा ये तारे मुझे देखने को मिलेंगे या नहीं।
तो एक ही बात हो सकती है, जीवन की कला का पहला सूत्र यही हो सकता है कि
जो भी मैं कर रहा हूं, जिस क्षण से भी मैं गुजर रहा हूं, जो भी मैं हूं, वह मैं समग्रता से हो जाऊं, वह पूर्णता से मैं हो जाऊं। वह मेरा टोटल, वह मेरे समग्र जीवन का केंद्रित अणु बन जाए, क्योंकि उसके बाहर का कुछ भी पता नहीं है। उसका कुछ भी पता नहीं है।
आज रात जब आप सोएं तो कौन सा पता है कि कल सुबह आप उठेंगे। तो फिर आज रात पूरी तरह सो लें, क्योंकि दुबारा सोना आएगा कि नहीं, नहीं कहा जा सकता। और अगर मित्र को विदा देने गए हैं तो यह विदा इतना संपूर्ण हो, इतनी परिपूर्ण, कि कौन जाने यह मित्र दुबारा मिलेंगे कि नहीं।
लेकिन हम ऐसे ढीले-ढाले जीते हैं कि वहां हमारे जीवन में क्षणों की तीव्रता का कोई बोध ही नहीं है, कोई स्पष्टता ही नहीं है! हम ऐसे जीते हैं, जैसे हमेशा जीने को हैं! हम ऐसे जीते है जैसे सुस्ती से और आहिस्ता से, जैसे जीवन एक लेजीनेस है, एक आलस्य है, एक प्रमाद है!
जीवन एक तीव्रता है। और जो जितनी तीव्रता से जीता है, वह जीवन के मंदिर में उतना ही गहरा प्रविष्ट हो जाता है।
लेकिन तीव्रता तो सिखाई नहीं जाती। न हम रोते हैं कभी तीव्रता से कि हमारे सारे प्राण आंसू बन जाएं। तब वे आंसू भी अदभुत हो जाते हैं, जो पूरे प्राणों से आते हैं। तब उन आंसुओं का मोल बहुत ज्यादा है। तब वे किन्हीं भी हीरे-जवाहरातों, किन्हीं भी मोतियों से ज्यादा बहुमूल्य हैं। वे आंसू जो पूरे प्राणों की झलक लेकर आते हैं, एक बार भी वैसा आदमी जब रो लेता है, तो रोने के द्वार से ही वह जीवन से संबंधित हो जाता है। या कि जब हम मुस्कुराएं तो वह हमारे पूरे प्राणों की मुस्कुराहट हो। तो वह मुस्कुराहट भी हमें उसी तीव्रता में ले जाती है।
जीवन का प्रत्येक अनुभव तीव्रता बने, इंटेंसिटि ले।

लेकिन क्या हमारे जीवन में ऐसी तीव्रता है? नहीं है तो फिर जीवन एक बंधन मालूम होगा। और वह जीवन का कसूर नहीं। वह आपके शिथिल, अतीव्र, ढीले- ढाले, सुस्त और प्रमादी जीवन का लक्षण है। वह आप जीना नहीं सीखे, इस बात का सबूत है।
जीना मेरी दृष्टि में, या कभी भी जब जीवन को आप जानेंगे तो आपकी दृष्टि में भी प्रति पल एक दांव है, एक जुआ है, उस पर सब कुछ लगा देना है। जो सब कुछ लगा देता है, वही सब कुछ को जान भी पाता है। हम कुछ लगाते ही नहीं! हमारा सब झूठा, सब शाब्दिक है। न हमने कभी श्रद्धा की है पूरे प्राणों से, न कभी प्रेम किया है, न कभी हंसे हैं, न कभी रोए हैं।
एक स्मरण मुझे आता है विजयनगर के राज्य में, एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ। उसकी सत्तरवीं वर्षगांठ राजधानी में मनाई जाती थी, राजदरबार में मनाई जाती थी। दूर-दूर से उसे प्रेम करने वाले और उसे श्रद्धा करने वाले लोग इकट्ठे हुए थे। वे अनेकानेक भेंट लाए थे, बहुमूल्य से बहुमूल्य। राजा आए थे, धनपति आए थे, बड़े कुशल संगीतज्ञ आए थे। सब भेंट लाए थे राजमहल में। दरबार भेंटों से भर गया था।
और तभी द्वार पर एक भिखमंगे ने आकर खबर की कि मैं भी कुछ भेंट लाया हूं। मुझे भी भीतर प्रवेश मिल जाए। लेकिन कपड़े उसके फटे थे, दीन-दरिद्र था। द्वारपाल लौटाने लगे। वह रोने लगा और उसने कहाः क्या करते हैं, मैं भी कुछ भेंट लाया हूं, मुझे भीतर तो जाने दें।
लेकिन भिखमंगे को कौन भीतर आने दे? लेकिन उसकी आवाज, उसका रोना, उसका चिल्लाना भीतर तक पहुंच गया। संगीतज्ञ को खबर मिली। उसने कहा, कि जरूर आ जाने दें-जो भी वह लाया हो, भिखमंगा ही सही। भेंट तो प्रेम की होती है। जरूर कुछ लाया होगा।
वह भिखमंगा ज्यादा उम्र का नहीं था, मुश्किल से चालीस वर्ष उसकी उम्र थी। वह द्वार पर आया, हजारों लोग राज-दरबार में थे। वह भीतर लाया गया। वह संगीतज्ञ के चरणों में झुका और उसने कहा, हे परमात्मा, मेरी शेष उम्र संगीतज्ञ को दे दो! और उसी क्षण उसके प्राण निकल गए!
उसी क्षण उसके प्राण निकल गए!
यह ऐतिहासिक घटना है, कोई कहानी नहीं। वे हजारों लोग खड़े रह गए दंग। ऐसी भेंट न तो कभी देखी गई थी, न सुनी गई थी। लेकिन पूर्णता के क्षणों में ही--पूर्णता के क्षणों में ही ऐसी संभावना घटित हो सकती है। पूरे प्राण फिर जो भी चाहते हैं, वह अगर घटित हो जाए तो कोई मिरेकल नहीं, कोई चमत्कार नहीं। पूरे प्राणों से उठी प्रार्थना उठने के पहले पूरी हो जाती है और पूरे प्राणों से उठी आकांक्षा शब्द बनने के पहले सत्य हो जाती है और पूरे प्राणों से चाहे गए स्वप्न रूप लेने के पहले यथार्थ हो जाते हैं।
लेकिन पूरे प्राणों से न हमने कभी कुछ चाहा है, न पूरे प्राणों से हमने जीने की कला सीखी है! इसलिए जीवन एक बंधन मालूम होता है। पूरे प्राणों से जो जीता है, वह निरंतर स्वतंत्रता में जीता है, वह हमेशा फ्रीडम में जीता है। उसके लिए कोई मोक्ष कहीं नहीं। प्रति पल वह मोक्ष में जीता है। इसलिए कोई मोक्ष स्वर्ग में नहीं है, कोई मोक्ष आकाश में नहीं है। वह है जीवन की परिपूर्णता से जीने की कला में।
रवींद्रनाथ मरने को थे। एक मित्र ने कहा, कि रवींद्रनाथ अब अंतिम क्षण आ गए, जीवन की संध्या आ गई। अब तुम प्रार्थना करो प्रभु से कि जीवन-मरण से छुटकारा दिला दे, आवागमन से मुक्त कर दे!
रवींद्रनाथ ने आंखें खोल लीं, जो बंद थीं। और वे हंसने लगे। और उसने कहा, रवींद्रनाथ ने कहा अपने मित्र को कि परमात्मा ने जो जीवन मुझे दिया था, वह इतना धन्य हुआ, मैं उसे पाकर इतना कृतार्थ हुआ कि मैं किस मुंह से कहूं कि मुझे जीवन से छुटकारा दिला दो? एक ही प्रार्थना अंतिम क्षण में मेरे हृदय में होगी कि अगर मुझमें जरा भी पात्रता हो तो हे प्रभु, मुझे बार-बार अपनी दुनिया में वापस भेज देना। अगर जरा-सी भी पात्रता हो मुझमें तो मुझे बार-बार अपनी दुनिया में भेज देना। तेरी दुनिया बहुत सुंदर थी। और अगर कहीं कोई कुरूपता मुझे दिखी होगी तो वह मेरे देखने का दोष रहा होगा, वह मेरी भूल रही होगी। और तेरी दुनिया में बहुत फूल थे और कांटे गड़ गए होंगे

तो मेरी कोई गलती रही होगी। अगली बार आऊं तो और समर्थ होकर आऊं, ताकि तेरे जीवन के आनंद को और भी अनुभव कर सकूं।
गांधी ने जीवन के अंतिम दिनों में एक अदभुत प्रयोग किया था। शायद आपके ख्याल में न हो, क्योंकि गांधी के शिष्यों ने उसे छिपाने की पूरी कोशिश की। उस प्रयोग की चर्चा पूरे मुल्क में नहीं हो सकी। गांधी ने जीवन के अंतिम दिनों में एक छोटा सा प्रयोग किया था। शायद उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण प्रयोग था। वे एक नग्न युवती को लेकर रात सोने लगे थे, ताकि वे यह पूरा का पूरा अनुभव कर सकें कि उनके मन में कहीं अब भी कोई वासना की रूप-रेखा है, कहीं कोई अब भी शरीर का आकर्षण शेष तो नहीं रह गया है। प्राण जब पूरे के पूरे प्रभु की तरफ बहने लगे हों तो शरीर की तरफ बहने को मन में कोई भाव शेष नहीं रह जाता है। इसका परीक्षण कर लें, पहचान कर लें, खोज-बीन कर लें।
लेकिन इसके पहले कि प्रयोग करें, उन्होंने अपने कोई बीस निकटतम मित्रों को पत्र लिखे और उनसे पूछा कि मैं यह प्रयोग करने को हूं। इसके पहले कि मैं प्रयोग करूं, तुमसे पूछ लेना चाहता हूं कि तुम राजी हो, सहमत हो, तुम्हारा कोई एतराज, तुम्हारा कोई, तुम्हारा कोई विरोध तो नहीं। बीस जो पत्र लिखे थे, उन्नीस पत्रों का जो उत्तर आया, उसकी इबारत करीब-करीब ऐसी थी कि आप तो बहुत बड़े महात्मा हैं, आप जो भी करते हैं, ठीक करते हैं, लेकिन इस प्रयोग को न करें तो बड़ी कृपा होगी! इससे बड़ी बदनामी हो जाएगी! इससे यह होगा, इससे वह होगा! सभी का रूप यही था कि आप तो बहुत बड़े महात्मा है, लेकिन वह "लेकिन" सबके पीछे आ जाता था!
गांधी पढ़ते और पत्र को एक तरफ रख देते और कहते, जहां "लेकिन" आ गया, वहां पहले कही गई सारी बात झूठ हो गई, मिथ्या हो गई। आप बड़े महात्मा हैं लेकिन अब लेकिन की क्या जरूरत है बड़े महात्मा के साथ? अच्छा होता कि कहते कि आप छोटे आदमी हैं इसलिए, वह कम से कम सच होता, ईमानदारी का होता, आथेंटिक होता, प्रामाणिक होता।
लेकिन उन बीस पत्रों में एक पत्र जरूर था। जिसे गांधी हाथ में उठा कर खुशी के आंसुओं से भर गए। वह जे बी कृपलानी ने, उस पत्र के उत्तर में लिखा था, उस उत्तर में कि आप क्या मुझसे पूछते हैं, तो मैं हैरान हो गया। अगर मैं अपनी आंखों से आपको व्यभिचार करते भी देख लूं तो पहला शक मुझे अपनी आंख पर होगा, आप पर नहीं। पहला शक मुझे अपनी आंखों पर होगा, आप पर नहीं! और आप मुझसे पूछते हैं तो मैं हैरान हो गया हूं। मैं आपसे पूछता तो ठीक था। ऐसे लोग, जीवन को इस भांति देखने वाले लोग।
लेकिन हम अपनी आंख पर शक नहीं करते, हम पूरे परमात्मा पर ही शक कर लेते हैं! हम कहते हैं, यह जीवन ही बंधन है! हम कहते हैं, यह जीवन ही असार है! हम कहते हैं, यह जीवन ही बुरा है! और एक बार भी ख्याल नहीं आता कि कहीं मेरी आंख ही तो कुछ गलत नहीं देखती, कहीं मेरी आंख ही तो बुरी नहीं।
धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूं, जिसे अपनी आंख पर शक आता है, अपने चित्त पर शक आता है, अपने होने के ढंग पर शक आता है, अपने पर संदेह आता है-- लेकिन इस विराट जीवन पर नहीं। वह आदमी धार्मिक है। वह आदमी रिलीजस है। और वह आदमी जीवन की कला सीख सकता है। क्योंकि जिसे स्वयं पर संदेह आता है, वह स्वयं को बदलने का कोई उपाय कर सकता है।
और अगर जीवन पर संदेह आता है, तब तो एक ही उपाय है कि पीठ करो जीवन की ओर-और भागो, पलायन करो, छोड़ो, निषेध करो, त्याग करो! धीरे-धीरे ग्रेजुअली मरने का उपाय करो, जीवन से हटो और मृत्यु की तरफ जाओ!
जीवन की कला की इसलिए पहली स्मरणीय बात यह है कि मैं कहीं गलत हूं, अगर जीवन मुझे बंधन मालूम होता है, दुख मालूम होता है, पीड़ा मालूम होती है! मैं कहां गलत हूं? तो मेरे गलत होने की सबसे पहली भूमि है कि मैं औपचारिक हूं, मैं फार्मल हूं; आथेंटिक नहीं, प्रामाणिक नहीं। मेरा होना एक झूठ है। मेरे शब्द झूठ हैं, मेरे इशारे झूठ हैं, मेरी आंखें झूठ कहती हैं, मेरा सब कुछ झूठ है। इस पर चिंतन, इस पर ध्यान बहुत जरूरी है कि मैंने कहीं कोई झूठा व्यक्तित्व, कोई फाल्स पर्सनैलेटी तो खड़ी नहीं कर ली?
हम सबने खड़ी कर ली है। बचपन से ही जहर के बीज बोए जाते हैं, कि व्यक्तित्व झूठा हो जाता है। लेकिन जब होश आ जाए, तभी व्यक्तित्व को सत्य

बनाने की दिशा में कुछ किया जा सकता है। तो मैं आपसे यह कहूंगा कि एक-एक पल को प्रामाणिक रूप से जीने की हिम्मत और साहस और कोशिश; स्मरणपूर्वक, माइंडफुली--एक-एक क्षण को पूरी तीव्रता से जीने का प्रयास साधना का अनिवार्य अंग है। तो अब जब रोएं तो परिपूर्णता से, पूरे प्राणों से। हंसें तो पूरे प्राणों से। मैत्री तो पूरे प्राणों से। भोजन भी तो पूरे प्राणों से। स्मरण भी तो पूरे प्राणों से; सोएं भी, उठें भी तो पूरे प्राणों से। जैसे प्रति पल जो आ रहा है, वह दुबारा नहीं आएगा। वह एक ही बार अनुभव
से गुजरना है। उस रास्ते से दुबारा गुजरने की कोई संभावना नहीं है। वह पल फिर न आएगा, वह अवसर फिर न आएगा। तो जिसे एक बार गुजरना है, मैं पूरे होश से, पूरा जागा हुआ, पूरे प्राणों से गुजर जाऊं। मेरा टोटल व्यक्तित्व, मेरा समग्र व्यक्तित्व समाहित हो जाए, संलग्न हो जाए, एकतान हो जाए। तो धीरे- धीरे आपको दिखाई पड़ना शुरू होगा कि जीवन के बंधन गिरने लगे। बंधन आपके शिथिल जीने में थे। तीव्रता से जीते ही तत्क्षण गिर जाते हैं।
लेकिन प्रयोग करना पड़े। साधना करनी पड़े, उस दिशा में कुछ कदम उठाने पड़ें, उस दिशा में कुछ स्मरणपूर्वक रोज-रोज, प्रति पल होश रखना पड़े कि मैं कहीं झूठा जीना तो शुरू नहीं कर रहा हूं।
पति है, वह अपनी पत्नी से रोज कहे जाता है कि "मैं तुझे प्रेम करता हूं!" और जब कहता है, तब उसे पता भी नहीं है कि वह क्या कर रहा है! शब्द ऐसे कह रहा है, जैसे किसी ग्रामोफोन रिकार्ड से निकलते हों, जिनमें न कोई प्राण है, न कोई अर्थ है। पत्नी भी जानती है। वह भी जानता है। पत्नी भी कहे जा रही है कि "हम तुम्हें प्रेम करते हैं, हम जान लगा देंगे, तुम्हारे बिना एक क्षण नहीं जी सकते!"
और इन शब्दों के पीछे प्राणों की कोई गवाही नहीं। ये शब्द झूठे हैं।
मत कहें। चुप बैठे रहें, वह बेहतर है। लेकिन मत कहें इनको। इनको कह कर आप सारे व्यक्तित्व को जाल में कस रहे हैं अपने हाथ से।
जिनके प्रति हमें कोई श्रद्धा नहीं, वहां हम सिर झुकाए चले जा रहे हैं! जिन मंदिरों में हमें पत्थर दिखाई पड़ते हैं, वहां हम पूजा किए चले जा रहे हैं! जिन शास्त्रों में हमें किसी सत्य का कोई दर्शन नहीं हुआ, उन्हें हम सिर पर लिए बैठे हैं! सारा व्यक्तित्व झूठा है।
तो इस झूठे व्यक्तित्व से जीवन के सत्य की तरफ कैसे कोई मार्ग बने, कैसे कोई द्वार खुले, कैसे कोई कदम उठे? जिस मंदिर में आप हाथ जोड़ कर गए हैं, सच में हाथ आपके जुड़े थे? उस मंदिर में किसी प्रभु का कभी कोई अनुभव हुआ था? फिर क्यों गए उस मंदिर में? फिर किसने कहा था कि उन मूर्तियों के सामने खड़े हो जाएं?
एक फकीर एक रात जापान के एक मंदिर में ठहरा हुआ है। सर्द रात है, बहुत ठंडी रात है। फकीर के पास कपड़े भी नहीं। मंदिर के पुजारी ने दया करके उसे भीतर ठहरा लिया। आधी रात पुजारी की नींद खुली तो घबड़ा कर देखा कि मंदिर के बीच आंगन में आग जल रही हैं, फकीर आंच ताप रहा है!
वह भागा हुआ गया कि यह क्या कर रहे हो? वहां जाकर तो पागल हो गया।
भगवान बुद्ध की तीन मूर्तियां थीं लकड़ियों की। उनमें से एक वह जला कर आंच ताप रहा था! उस पुरोहित ने कहा, कि पागल, यह क्या कर रहा है? भगवान की मूर्ति जला रहा है? भगवान को जला रहा है?
वह फकीर पास में पड़ा हुआ एक लकड़ी का टुकड़ा उठा कर जल गई मूर्ति की राख में घुमाने लगा, कुरेदने लगा! उस पुरोहित ने पूछाः आप क्या कर रहे हैं यह? उसने कहाः मैं भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं।
उस पुजारी ने सिर से हाथ ठोक लिया, उसने कहाः मैं पागल को ठहरा कर दिक्कत में पड़ गया। अब लकड़ी की मूर्ति में कहीं अस्थियां होती हैं?
तो वह फकीर हंसने लगा। उसने कहाः जब लकड़ी की मूर्ति में अस्थियां ही नहीं होती तो भगवान कैसे हो सकते होंगे? तुम जाओ, अभी रात बहुत बाकी है, दो मूर्तियां और रखी हैं, वे भी उठा लाओ! तुम भी तापो, मैं भी तापता हूं!
रात ही उस फकीर को मंदिर के बाहर निकाल दिया गया, उस सर्द रात में! क्योंकि लकड़ी की मूर्ति में भगवान दिखाई पड़ते थे और इस जीते-जागते भगवान को सर्दी लगेगी बाहर, इसकी फिकर नहीं की गई! उसे बाहर निकाल दिया गया।

सुबह जब पुजारी उठा, मंदिर के बाहर गया तो देखा कि सड़क के किनारे जो मील का पत्थर लगा है, उसके पास बैठ कर वह फकीर हाथ जोड़े हुए ध्यान कर रहा है। उसे फिर उतनी ही हैरानी हुई, जैसी रात हो गई थी। उसके पास जाकर उसे हिलाया और कहाः पागल, यह क्या कर रहा है? पत्थर को हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर रहा है?
उस फकीर ने कहाः मुझे सभी जगह भगवान ही दिखाई पड़ते हैं--सभी जगह! रात मैंने इसीलिए मूर्ति जलाई थी कि मैं देखना चाहता था कि तुम्हें भगवान कितने गहरे दिखाई पड़ते हैं। अस्थियों के लिए तुम भी राजी न हो सके। तुम्हारे ही तर्क से पता चला कि भगवान तुम्हें बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ते थे। वह मूर्ति झूठी थी तुम्हारे लिए। वे जुड़े हुए हाथ झूठे थे। वह की गई पूजा झूठी थी।
रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर में पुजारी की जगह मिली थी। बीस रुपये महीने
की नौकरी थी, लेकिन दो-चार आठ दिन में ही मुश्किल शुरू हो गई। कमेटी थी मंदिर की, वह परेशान हो गई। कमेटी जुड़ी और उसने कहा कि यह आदमी तो गड़बड़ मालूम होता है। ठीक आदमी हमेशा गड़बड़ मालूम होते हैं! बड़ी शिकायतें आ गई हैं, चार ही दिन में--पूजा बड़ी गड़बड़ चल रही है।
क्या-क्या शिकायतें थीं।
शिकायतें बड़ी साफ थीं और ठीक थीं। खबर आई थी कि रामकृष्ण फूलों को सूंघ कर मूर्ति को चढ़ाते हैं, खबर आई थी कि प्रसाद को पहले चख लेते हैं, फिर भगवान को लगाते हैं! तो कहा, यह सब क्या गड़बड़ हो रहा है? यह कोई पूजा है। रामकृष्ण को बुलाया--कि सुना गया है कि तुम फूल पहले सूंघ लेते हो फिर मूर्ति को चढ़ाते हो?
रामकृष्ण ने कहा कि मैं वैसे चढ़ा ही नहीं सकता। पता नहीं, फूल में सुगंध हो या न हो।
कहा कि, सुना है कि तुम पहले भोजन चख लेते हो फिर तुम भगवान को लगाते हो?
उन्होंने कहाः मेरी मां भी ऐसा ही करती थी। पहले चख लेती थी, फिर मुझे देती थी। मैं बिना चखे नहीं दे सकता। पता नहीं, भोजन देने लायक बना भी हो या न बना हो।
यह आथेंटिक, यह एक प्रामाणिक पूजा हो गई। लेकिन हमारी सारी पूजा झूठी
और बकवास और धोखा है। कुछ दिखाई नहीं पड़ता वहां! हाथ जोड़े खड़े हैं अंधेरे में! शब्द झूठे हैं! प्रार्थना झूठी है! प्रेम झूठा है! और फिर पूछते हैं कि जीवन बंधन है? बंधन जीवन नहीं, मिथ्या व्यक्तित्व बंधन है। वह जो फाल्स पर्सनैलिटि है, वह जो हमने सब झूठ कर रखा है, वह बंधन है। तोड़ें--औपचारिकता को तोड़ें, छोड़ें।
प्रामाणिकता को, जीवंत अनुभव को तीव्रता से जीएं। उसकी सच्चाई में जीना शुरू करें, फिर आप पाएंगे कि छोटे-छोटे काम पूजा हो गए। उठना-बैठना पूजा हो गई। फिर आप पाएंगे, किसी का हाथ हाथ में लेना पूजा हो गई। फिर आप पाएंगे, किसी की आंख में एक क्षण प्रेम से झांक लेना, प्रार्थना हो गई। फिर आपको दिखाई पड़ेगा, वह तो सब तरफ मौजूद होने लगा। उसका मंदिर तो सब तरफ उठने लगा। फिर तो कण-कण में, पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में उसकी झलक आने लगी। फिर तो सब उसी के शब्द हो जाते हैं।
लेकिन जो प्रामाणिक रूप से जीता है, वह प्रामाणिक रूप से जीवन के सत्य
से संबंधित हो जाता है।
हम अप्रामाणिक रूप से जीते हैं, इसलिए जीवन से संबंध नहीं होता है।
अभी तो इतना ही। फिर और कुछ दो-चार प्रश्न इस संबंध में होंगे। तो कल उनकी बात करेंगे। एक छोटी बात और, फिर हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। ध्यान के संबंध में भी, इसी संदर्भ में, यह समझ लेना जरूरी है कि वह प्रामाणिक है या अप्रामाणिक। वह हम अपने पूरे प्राणों से बैठ रहे हैं या बस बैठ गये हैं, क्योंकि और सब लोग बैठ गए हैं। अगर इसी भांति आप बैठ गए हैं--चूंकि और सब लोग बैठे हैं, इसलिए हम भी बैठे हैं! चूंकि शिविर में आए हैं, इसलिए बैठे हैं! चूंकि अब आ ही गए हैं, इसलिए बैठ ही जाना चाहिए। अगर इस तरह बैठ रहे हैं तो उस ध्यान में कहीं कोई गति नहीं होगी।

लेकिन पूरे प्राणों से, पूरा दांव लगा कर--कौन जानता है कि ध्यान के बाद आप उठ पाएं या न उठ पाएं। कौन जानता है, यह क्षण अंतिम हो। और कहीं यह क्षण हाथ से खो जाए तो हमेशा के लिए खो जाए। कौन कह सकता है? तो इस भांति कि जैसे हो सकता है, यह अंतिम क्षण हो।
एक-एक युवा संन्यासी अपने गुरु के पास पहुंचा था। उस गुरु के उस आश्रम
का नियम था कि जब भी कोई व्यक्ति आए तो पहले तीन परिक्रमा करे गुरु की, फिर सात बार पैर छुए, फिर बैठ कर जिज्ञासा करे! वह युवा पहुंचा। उसने जाकर कंधे पकड़ लिए सीधे और कहा, कि मैं कुछ पूछने आया हूं!
उस गुरु ने कहाः कैसे बदतमीज हो, कैसे अशिष्ट हो? तुम्हें पता भी नहीं,
कि पहले तीन परिक्रमा, सात बार चरण स्पर्श-फिर बैठो, फिर पूछो। ऐसे उत्तर नहीं दिए जाते।
उस युवक ने कहा कि तीन बार नहीं, मैं तीन सौ परिक्रमाएं करूंगा और सात बार नहीं, सात सौ बार पैर छुऊंगा, लेकिन क्या आप विश्वास दिलाते हैं कि मैं तीन चक्कर लगाऊं, उसके बाद भी जिंदा बचूंगा? आप विश्वास दिलाते हैं, आप जिम्मा लेते हैं मेरे बचने का? मेरा उत्तर पहले है, मेरा प्रश्न पहले है। मुझे पहले उत्तर मिल जाए, फिर फुरसत से आपके चक्कर लगाऊं, पैर छूऊं।
उस गुरु ने अपने और शिष्यों से कहाः यह पहली दफा एक आथेंटिक, पहली दफा
एक प्रामाणिक प्रश्न पूछने वाला आदमी आ गया है। अब इसे उत्तर देने की भी जरूरत नहीं है। इसका प्रश्न ही काफी है। उत्तर तक पहुंचा देगा।
तो ध्यान इतनी संपूर्णता से, समग्रता से हो, तो इसी क्षण हो सकता है-- अभी और यहीं, इसी क्षण हो सकता है, अगर पूरे प्राण इकट्ठे हो जाएं।
स्वामी रामतीर्थ पढ़ते थे, गणित के विद्यार्थी थे। और हमेशा की एक आदत थी--परीक्षा में अगर बारह प्रश्न आते और लिखा होता कि कोई भी सात हल करें तो वे बारह ही हल करते और लिखते कि कोई भी सात जांच लें! वैसी आदत थी। हमेशा की आदत थी। जितने प्रश्न परीक्षक पूछता, सारे हल कर देते और, ऊपर जैसा नोट परीक्षक देता हैं कि दस दिए हैं प्रश्न, कोई पांच हल करें; वैसा ऊपर नोट लिखते कि दस कर दिए हैं प्रश्न, कोई भी पांच जांच लें! उतना विश्वास भी था कि वे सभी सही हैं।
एम. ए. की गणित की अंतिम परीक्षा दे रहे थे और सांझ सात बजे से एक प्रश्न हल करना शुरू किया। रात के तीन बजे गए, और प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिल रहा है। साथ जो कमरे में उनका दूसरा सहपाठी है, वह कहने लगा, तुम पागल हो गए हो। सुबह करीब आई जाती है और एक प्रश्न पर सारी रात खराब कर रहे हो! कौन कहता है कि यह प्रश्न आएगा भी। दूसरों की फिकर भी कर लो।
रामतीर्थ ने कहाः और अगर यह आ गया तो क्या आज पहली दफा अंतिम परीक्षा में मुझे सारे प्रश्न हल नहीं करने पड़ेंगे? पांच ही करके आ जाऊंगा? नहीं, नहीं, यह मुझे हल करना ही है। फिर परीक्षा का सवाल नहीं है। जो प्रश्न हल नहीं हो रहा है, उसने मेरे पूरे प्राणों को चुनौती दे दी है। उसे तो हल करना ही पड़ेगा।
साढ़े तीन बज गए, चार बज गए, अब तो दो ही घंटे बचे हैं सुबह के। पूरी रात
खो गई। वह प्रश्न हल नहीं होता। वह मित्र घबड़ा गया है--साथी, और कह रहा है, क्या पागलपन कर रहे हो?
तभी रामतीर्थ उठे हैं और जाकर उन्होंने अपनी पेटी से एक छुरा निकाल लाए। छुरे को टेबल पर रख लिया। घड़ी में पंद्रह मिनट बाद का अलार्म भर दिया और अपने मित्र से कहा कि भाई नमस्कार! अगर पंद्रह मिनट में यह सवाल हल नहीं हो गया, तो छुरा छाती के भीतर हो जाएगा।
मित्र ने कहाः क्या बिल्कुल ही पागल हुए जा रहे हो! इस सवाल से ऐसा क्या लेना-देना है?
लेकिन रामतीर्थ सुनने के बाहर हो गए थे! पंद्रह मिनट का अलार्म भर दिया था। घड़ी टिक-टिक आगे बढ़ने लगी है। छुरा सामने गपा हुआ है नंगा और वे सवाल हल करने लग गए। सर्द रात है। ठंडी हवाएं हैं। माथे से तीन मिनट के भीतर पसीना चूने लगा! सारे शरीर से पसीने की धाराएं बहने लगीं! पांच मिनट पूरे नहीं हो पाए हैं कि सवाल हल हो गया है। जो छह-सात घंटे से परेशान किए हुआ था, वह सवाल पांच मिनट के भीतर हल हो गया। माथा पोंछा उन्होंने और अपने मित्र से कहा, कि सवाल हल हो गया है।

उसके मित्र ने कहाः यह तो तरकीब बड़ी अच्छी है! अगली बार जब कभी ऐसी दिक्कत मुझे हुई, मैं भी छुरा रख लूंगा, मैं भी अलार्म भर दूंगा। और किसको छुरा मारना है? अलार्म बज भी जाएगा और नहीं भी हुआ तो हर्ज भी क्या है।
तो रामतीर्थ ने कहाः तू समझता है कि यह कोई तरकीब हुई। यह तरकीब न थी। किसी को धोखा नहीं दिया जा रहा था। यह तो निश्चित था कि पंद्रह मिनट पूरे होते और छुरा छाती के भीतर हो जाता।
जब ऐसी समग्रता से कोई व्यक्ति किसी प्रश्न के सामने खड़ा हो जाए तो प्रश्न की कोई हस्ती है, कोई हैसियत है? कोई ताकत है? जब इतने प्राणों को पूरा का पूरा कोई दांव पर लगा दे तो किस चीज की ताकत है? कौन सा प्रश्न है, जो रुकेगा? कौन सी समस्या है, जो रुकेगी? कौन सी उलझन है, जो रुकेगी? कौन सी अशांति है, जो रुकेगी? जीवन की कौन सी बाधा है, जो रुक सकती है?
समग्रता से जीवन को दांव पर लगाने वाले लोगों के सामने न कभी कुछ आया
है, न कभी आ सकता है। सब हट जाता है। सब द्वार खुल जाते हैं। सब ताले टूट जाते हैं। लेकिन हम कभी समग्रता से जीने की कोई, कोई दृष्टि ही हमारे पास नहीं है। ध्यान भी केवल उनके लिए कुंजी हो सकती है, जो ध्यान को पूरी प्रामाणिकता से, समग्रता से एक दांव बना लेते हैं। सब कुछ लगा देते हैं-- पूरी शक्ति--सब, सारी ऊर्जा।
यह बात और मुझे आपसे कहनी है कि ध्यान तो जीवन के समस्त खजानों की कुंजी है। लेकिन वह कुंजी उन्हीं को उपलब्ध होती है, जो उसे पाने के लिए पूरी प्यास को प्रकट करते हैं, पूरी प्रार्थना को, पूरे प्राणों को सामने ले आते हैं। आज ही हो सकता है। इसी वक्त हो सकता है। करने की भी जरूरत नहीं। मेरे कहते-कहते भी हो सकता है।
अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।
तो अपनी-अपनी जगह बना लें, क्योंकि लेटना पड़ेगा। चुपचाप, बिल्कुल आवाज नहीं। जरा भी बात नहीं। अपनी-अपनी जगह ले लें। और आज पूरे प्राणों से, क्योंकि एक रात आज, एक रात कल, फिर विदा हो जाना...
जरा भी हंसिए नहीं, जरा भी बात मत करिए, क्योंकि वह सब आपके लिए नुकसान
की बात होगी...
जगह ऊंची-नीची है तो ऐसे लेटिए कि सिर आपका ऊंचाई की तरफ रहे... कोई किसी को छूता हुआ न हो, थोड़े हट जाएं, थोड़ी जगह... बाहर आ जाएं, हां... बीच में तकलीफ हो तो थोड़ा बाहर निकल आएं। अपनी-अपनी जगह ले लें चुपचाप कहीं भी, कहीं भी चुपचाप लेट जाएं।
ठीक है! मैं मान लेता हूं, आपने अपनी जगह बना ली। जल्दी अपनी जगह बना लें। चुपचाप लेट जाएं। यहां-वहां न घूमें। बैठ जाएं, लेट जाएं।
सबसे पहले पूरी प्रामाणिकता से--मैं ध्यान में जा रहा हूं, इस भाव को ठीक से अपने चित्त के केंद्र पर ले लें। पूरी शक्ति से, पूरी प्राणों से, पूरी आत्मा से--मैं शून्य में प्रवेश कर रहा हूं।
यह मेरा एक प्रामाणिक संकल्प है। यह कोई औपचारिक बात नहीं कि मैं ध्यान करने बैठ गया हूं। जैसे इस पर ही मेरी पूरी जिंदगी लगी हुई है। मेरी पूरी जिंदगी और मृत्यु का सवाल है। इस भाव को चित्त के केंद्र पर ले लें। फिर आंख बंद कर लें।
सारे शरीर को शिथिल छोड़ दे। आंख बंद कर लें, सारे शरीर को शिथिल छोड़ दें। इतनी अदभुत रात है कि जरूर कुछ हो सकेगा। इतनी आपकी प्यास है कि जरूर कुछ हो सकेगा। कौन रोक सकता है होने से। शरीर को शिथिल छोड़ दें। आंख बंद कर लें।
अब मैं थोड़े से सुझाव देता हूं। मेरे साथ पूरे प्राणों से अनुभव करें, फिर वैसा ही होता चला जाएगा।...
सबसे पहले भाव करें--शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है--ढ़ीला छोड़ दें... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो गया है।
श्वास भी शांत होती जा रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास को भी बिल्कुल शांत छोड़ दें... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है।

मन भी शांत होता जा रहा है... मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन
भी शांत हो गया।
शरीर ढीला छूट गया, श्वास ढीली छूट गई। मन भी ढीला छूट गया। अब चुपचाप भीतर होश से भरे हुए--कोई भी आवाज सुनाई पड़ती हो, चुपचाप सुनते रहें और कुछ भी न करें। रात का सन्नाटा सुनाई पड़ेगा। हवाओं की आवाज सुनाई पड़ेगी। दूर सागर से आता गर्जन सुनाई पड़ेगा। सब चुपचाप सुनते रहें... बस होश से भरे हुए सुनते रहें... सुनें... दस मिनट के लिए बिल्कुल मौन सुनते रहें... रात की आवाजों को सुनते रहें... सुनते रहें... रात के सन्नाटे को सुनते रहें। धीरे- धीरे वैसा ही सन्नाटा भीतर भी आ जाएगा। मन शांत हो जाएगा। मन बिल्कुल शांत होता जाएगा। सुनें... रात की आवाजें सुनें। छोटी-छोटी आवाज भी सुनाई पड़ेगी। देखें हवाओं की आवाज...
परमात्मा बहुत सी आवाजें कर रहा है--चुपचाप सुनें। सुनते सुनते ही मन शांत होता जाता है... मन शांत होता जाता है... मन शांत होता जाता है... मन शांत होता जा रहा है... सुनते रहें रात की आवाजों को सुनते रहें... मन बिल्कुल शांत होता जा रहा है... मन शांत होता जा रहा है... मन शांत होता जा रहा है... सुनते रहें... सुनते ही सुनते मन शांत होता जा रहा है... मन शांत होता जा रहा है।
रात का सन्नाटा सुनते रहें। फिर धीरे... हवाएं ही रह जाएंगी... रात की आवाजें रह जाएंगी... आप मिट जाएंगे... आप न हो जाएंगे... आप नहीं हो जाएंगे। जीवन से एक हो जाएं। मन शांत होता जा रहा है... छोड़ दें अपने को... मिट जाएं... मन बिल्कुल शांत हो गया... मन शांत हो गया... मन शांत हो गया... मन बिल्कुल शांत हो गया...
अब धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। फिर बहुत आहिस्ता से आंख खोलें। जैसी शांति भीतर है वैसी ही बाहर भी है। धीरे-धीरे आंख खोलें। जो भीतर है वही बाहर भी है। धीरे-धीरे आंख खोलें। देखें वृक्षों को। देखें सूरज की किरणों को। जो भीतर है वही बाहर भी है।

सुबह की बैठक समाप्त हुई।

शून्य की नाव
छठवां प्रवचन

प्रेम संबंध नहीं--चित्त-दशा है
(5 मई 1968 सुबह)

पहले दिवस की चर्चा में जीवन के प्रति विस्मय-विमुग्ध भाव चाहिए, इस संबंध में थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कही थीं। दूसरे दिन की चर्चा में जीवन के प्रति रस-विभोर भाव चाहिए, इस संबंध में थोड़ी सी बातें कहीं थीं। और आज तीसरी चर्चा में जीवन के प्रति प्रेम-निमग्न मन चाहिए, इस संबंध में कुछ आपसे कहना है। प्रेम तीसरा सूत्र है।
ज्ञान से जहां नहीं पहुंचता मनुष्य, वहां प्रेम से पहुंच जाता है।
लेकिन प्रेम का हमें कोई पता ही नहीं है। प्रेम के नाम से जो कुछ हम जानते हैं, वे सब झूठे सिक्के हैं। झूठे सिक्के इतने ज्यादा प्रचलित हैं कि असली सिक्कों को पहचानना ही कठिन हो गया।
प्रेम शब्द जितना मिसअंडरस्टुड है, जितना गलत समझा जाता है, उतना शायद मनुष्य की भाषा में कोई दूसरा शब्द नहीं! प्रेम के संबंध में जो गलत-समझी है, उसका ही विराट रूप इस जगत के सारे उपद्रव, हिंसा, कलह, द्वंद्व और संघर्ष हैं। प्रेम की बात इसलिए थोड़ी ठीक से समझ लेनी जरूरी है।
जैसा हम जीवन जीते हैं, प्रत्येक को यह अनुभव होता होगा कि शायद जीवन
के केंद्र में प्रेम की आकांक्षा और प्रेम की प्यास और प्रेम की प्रार्थना है। जीवन का केंद्र अगर खोजना हो, तो प्रेम के अतिरिक्त और कोई केंद्र नहीं मिल सकता है।
समस्त जीवन के केंद्र में एक ही प्यास है, एक ही प्रार्थना है, एक ही अभीप्सा है--वह अभीप्सा प्रेम की है।
और वही अभीप्सा असफल हो जाती हो तो जीवन व्यर्थ दिखाई पड़ने लग-- अर्थहीन, मीनिंगलेस, फ्रस्ट्रेशन मालूम पड़े, विफलता मालूम पड़े, चिंता मालूम पड़े तो कोई आश्चर्य नहीं। जीवन की केंद्रीय प्यास ही सफल नहीं हो पाती है! न तो हम प्रेम दे पाते हैं और न उपलब्ध कर पाते हैं। और प्रेम जब असफल रह जाता है, प्रेम का बीज जब अंकुरित नहीं हो पाता, तो सारा जीवन व्यर्थ-व्यर्थ, असार-असार मालूम होने लगता है।
जीवन की असारता प्रेम की विफलता का फल है।
जब प्रेम सफल होता है, तो जीवन सार बन जाता है। प्रेम विफल होता है तो जीवन प्रयोजनहीन मालूम होने लगता है। प्रेम सफल होता है, जीवन एक सार्थक, कृतार्थता और धन्यता में परिणत हो जाता है।
लेकिन यह प्रेम है क्या? यह प्रेम की अभीप्सा क्या है? यह प्रेम की पागल प्यास क्या है? कौन सी बात है, जो प्रेम के नाम से हम चाहते हैं और नहीं उपलब्ध कर पाते?
जीवन भर प्रयास करते हैं? सारे प्रयास प्रेम के आस-पास ही होते हैं। युद्ध प्रेम के आस-पास लड़े जाते हैं। धन प्रेम के आस-पास इकट्ठा किया जाता है। यश की सीढ़ियां प्रेम के लिए पार की जाती हैं। संन्यास प्रेम के लिए लिया जाता है। घर-द्वार प्रेम के लिए बसाए जाते हैं और प्रेम के लिए छोड़े जाते हैं।
जीवन का समस्त क्रम प्रेम की गंगोत्री से निकलता है।
जो लोग महत्वाकांक्षा की यात्रा करते हैं, पदों की यात्रा करते हैं,
यश की कामना करते हैं, क्या आपको पता है, वे सारे लोग यश के माध्यम से जो प्रेम से नहीं मिला है, उसे पा लेने की कोशिश करते हैं! जो लोग धन की तिजोरियां भरते चले जाते हैं, अंबार लगाते जाते हैं, क्या आपको पता है, जो प्रेम से नहीं मिला, वह पैसे के संग्रह से पूरा करना चाहते हैं! जो लोग बड़े युद्ध करते हैं और बड़े राज्य जीतते हैं, क्या आपको पता है, जिसे वे प्रेम में नहीं जीत सके, उसे भूमि जीत कर पूरा करना चाहते हैं!

शायद आपको ख्याल में न हो, लेकिन मनुष्य-जीवन का सारा उपक्रम, सारा श्रम, सारी दौड़, सारा संघर्ष अंतिम रूप से प्रेम पर ही केंद्रित है। लेकिन यह प्रेम की अभीप्सा क्या है? पहले इसे हम समझें तो और बात समझी जा सके। जैसा मैंने कल कहा, मनुष्य का जन्म होता है, मां से टूट जाता है संबंध शरीर का। अलग एक इकाई अपनी यात्रा शुरू कर देती है। अकेली एक इकाई जीवन के इस विराट जगत में अकेली यात्रा शुरू कर देती है! एक छोटी सी बूंद समुद्र से छलांग लगा गई है और अनंत आकाश में छूट गई है। एक छोटे से रेत का कण तट से उड़ गया है और हवाओं में भटक गया है। मां से व्यक्ति अलग होता। एक बूंद टूट गई सागर से और अनंत आकाश में भटक गई है। वह बूंद वापस सागर से जुड़ना चाहती है। वह जो व्यक्ति है, वह फिर समष्टि के साथ एक होना चाहता है। वह जो अलग हो जाना है, वह जो पार्थक्य है, वह फिर से समाप्त होना चाहता है।
प्रेम की आकांक्षा--एक हो जाने की, समस्त के साथ एक हो जाने की आकांक्षा है।
प्रेम की आकांक्षा, अद्वैत की आकांक्षा है।
प्रेम की एक ही प्यास है, एक हो जाए सबसे; जो है, समस्त से संयुक्त हो जाए।
जो पार्थक्य है, जो व्यक्ति का अलग होना है, वही पीड़ा है व्यक्ति की।
जो व्यक्ति का सबसे दूर खड़े हो जाना है, वही दुख है, वही चिंता है। वापस बूंद सागर के साथ एक होना चाहती है।
प्रेम की आकांक्षा समस्त जीवन के साथ एक हो जाने की प्यास और प्रार्थना है। प्रेम का मौलिक भाव एकता खोजना है।
लेकिन जिन-जिन दिशाओं में हम यह एकता खोजते हैं, वहीं-वहीं असफल हो जाते हैं। जहां-जहां यह एकता खोजी जाती है, वहीं-वहीं असफल हो जाते हैं। शायद जिन मार्गों से हम एकता खोजते हैं, वे मार्ग ही अलग करने वाले मार्ग हैं, एक करने वाले मार्ग नहीं। इसलिए प्रेम के नाम से झूठे सिक्के प्रचलित हो गए।
मनुष्य जो एकता खोजता है, वह शरीर के तल पर खोजता है। लेकिन शायद आपको पता नहीं, पदार्थ के तल पर जगत में कोई भी एकता संभव नहीं है। शरीर के तल पर कोई भी एकता संभव नहीं है। पदार्थ अनिवार्य रूप से एटामिक है, आणविक है और एक-एक अणु अलग-अलग है। दो अणु पास तो हो सकते हैं, लेकिन एक नहीं हो सकते। निकट हो सकते हैं, लेकिन एक नहीं हो सकते। दो अणुओं के बीच अनिवार्य रूप से जगह शेष रह जाएगी, फासला, डिस्टेंस शेष रह जाएगा।
पदार्थ की सत्ता एटामिक है, आणविक है। प्रत्येक अणु दूसरे अणु से अलग है। हम लाख उपाय करें तो भी दो अणु एक नहीं हो सकते। उनके बीच में फासला, उनके बीच में दूरी शेष रह ही जाएगी। ये हाथ हम कितने ही निकट ले आएं, ये हाथ हमें जुड़े हुए मालूम पड़ते हैं, लेकिन ये हाथ फिर भी दूर हैं। इनके जोड़ में भी फासला है। इन दोनों हाथ में बीच में दूरी है, वह दूरी समाप्त नहीं हो सकती। दो शरीर कितने ही निकट आ जाएं उनके बीच दूरी समाप्त नहीं हो सकती। प्रेम में हम किसी को हृदय से लगा लेते हैं। दो देह पास आ जाती हैं, लेकिन दूरी बरकरार रहती है, दूरी मौजूद रह जाती है। इसलिए हृदय से लगा कर भी किसी को पता चलता है कि हम अलग-अलग हैं, पास नहीं हो पाए, एक नहीं हो पाए।
शरीर को निकट लेने पर भी, वह जो एक होने की कामना थी, अतृप्त रह जाती है।
इसलिए शरीर के तल पर किए गए सारे प्रेम असफल हो जाते हों, तो आश्चर्य नहीं। प्रेमी पाता है कि असफल हो गए। जिसके साथ एक होना चाहा था, वह पास तो आ गया; लेकिन एक नहीं हो पाए।
लेकिन उसे यह नहीं दिखाई पड़ता कि यह शरीर की सीमा है कि शरीर के तल पर
एक नहीं हुआ जा सकता, पदार्थ के तल पर एक नहीं हुआ जा सकता, मैटर के तल पर एक नहीं हुआ जा सकता। यह स्वभाव है पदार्थ का कि वहां पार्थक्य होगा, दूरी होगी, फासला होगा।
लेकिन प्रेमी को यह नहीं दिखाई पड़ता है! उसे तो यह दिखाई पड़ता है कि शायद जिसे मैंने प्रेम किया है, वह मुझे ठीक से प्रेम नहीं कर पा रहा है, इसलिए दूरी रह गई है। उसे शरीर के तल पर एकता खोजना नासमझी है, यह नहीं दिखाई पड़ता! लेकिन दूसरा--प्रेमी दूसरी तरफ जो खड़ा है, जिससे उसने प्रेम की आकांक्षा की थी, वह शायद प्रेम नहीं कर रहा है, इसलिए एकता उपलब्ध नहीं हो

पा रही। उसका क्रोध प्रेमी पर पैदा होता है, लेकिन दिशा ही गलत थी प्रेम की, यह ख्याल नहीं आता! इसलिए दुनिया भर में प्रेमी एक-दूसरे पर क्रुद्ध दिखाई पड़ते हैं। पति-पत्नी एक-दूसरे पर क्रुद्ध दिखाई पड़ते हैं!
सारे जगत में प्रेमी एक-दूसरे के ऊपर क्रोध से भरा हुआ है, क्योंकि वह आकांक्षा जो एक होने की थी, वह विफल हो गई है, असफल हो गई है। और वह सोच रहा है कि दूसरे के कारण असफल हो गया हूं! प्रत्येक यही सोच रहा है कि दूसरे के कारण असफल हो गया हूं, इसलिए दूसरे पर क्रोध कर रहा है! लेकिन मार्ग ही गलत था। प्रेम शरीर के तल पर नहीं खोजा जा सकता था, इसका स्मरण नहीं आता है। इस एकता की दौड़ में, जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम पजेस करना चाहते हैं, उसके हम पूरे मालिक हो जाना चाहते हैं! कहीं ऐसा न हो कि मालकियत कम रह जाए, पजेशन कम रह जाए तो एकता कम रह जाए। इसलिए प्रेमी एक-दूसरे के मालिक हो जाना चाहते हैं। मुट्ठी पूरी कस लेना चाहते हैं। दीवाल पूरी बना लेना चाहते हैं कि प्रेमी कहीं दूर न हो जाए, कहीं हट न जाए, कहीं दूसरे मार्ग पर न चला जाए, किसी और के प्रेम में संलग्न न हो जाए। तो प्रेमी एक-दूसरे को पजेस करना चाहते हैं, मालकियत करना चाहते हैं।
और उन्हें पता नहीं कि प्रेम कभी मालिक नहीं होता। जितनी मालकियत की कोशिश होती है, उतना फासला बड़ा होता चला जाता है, उतनी दूरी बढ़ती चली जाती है; क्योंकि प्रेम हिंसा नहीं है, मालकियत हिंसा है, मालकियत शत्रुता है। मालकियत किसी की गर्दन को मुट्ठी में बांध लेना है। मालकियत जंजीर है। लेकिन प्रेम भयभीत होता है कि कहीं मेरा फासला बड़ा न हो जाए, इसलिए निकट, और निकट, और सब तरफ से सुरक्षित कर लूं ताकि प्रेम का फासला नष्ट हो जाए, दूरी नष्ट हो जाए। जितनी यह चेष्टा चलती है दूरी नष्ट करने की, दूरी उतनी बड़ी होती चली जाती है। विफलता हाथ लगती है, दुख हाथ लगता है, चिंता हाथ लगती है।
फिर आदमी सोचता है कि यह प्रेम शायद इस व्यक्ति से पूरा नहीं हो पाया
है, इसलिए दूसरे व्यक्ति को खोजूं। शायद यह व्यक्ति ही गलत है। तब आंखें दूसरे प्रेमियों की खोज में भटक जाती हैं, लेकिन बुनियादी गलती वहीं की वहीं बनी रहती है। शरीर के तल पर एकता असंभव है, यह ख्याल नहीं आता! यह शरीर और वह शरीर का सवाल नहीं है। सभी शरीर के तल पर एकता असंभव है।
आज तक मनुष्य-जाति शरीर के तल पर एकता और प्रेम को खोजती रही है, इसलिए जगत में प्रेम जैसी घटना घटित नहीं हो पाई।
जैसा मैंने आपसे कहा, यह जो पजेशन और मालकियत की चेष्टा चलती है, स्वभावतः उसके आसपास ईर्ष्या का जन्म होगा।
जहां मालकियत है, वहां ईर्ष्या है। जहां पजेशन है, वहां जेलेसी है।
इसलिए प्रेम के फूल के आसपास ईर्ष्या के बहुत कांटे, बहुत बागुड़ खड़ी
हो जाती है और ईर्ष्या की आग के बीच प्रेम कुम्हला जाता हो, तो आश्चर्य नहीं। वह जन्म भी नहीं पाता है कि जलना शुरू हो जाता है! जन्म भी नहीं हो पाता कि चिता पर सवारी शुरू हो जाती है!
जैसे किसी बच्चे को पैदा होते ही हमने चिता पर रख दिया हो, ऐसे ही प्रेम ईर्ष्या की चिता पर रोज चढ़ जाता है। ईर्ष्या इसलिए पैदा होती है, जहां मालकियत है। जहां मैंने कहा, "मैं", "मेरा", वहां डर है कि कहीं कोई और मालिक न हो जाए। ईर्ष्या शुरू हो गई, भय शुरू हो गया, घबड़ाहट शुरू हो गई, चिंता शुरू हो गई, पहरेदारी शुरू हो गई। और ये सारे के सारे मिल कर प्रेम की हत्या कर देते हैं। प्रेम को किसी पहरे की कोई जरूरत नहीं। प्रेम का, ईर्ष्या से कोई नाता नहीं है।
जहां ईर्ष्या है, वहां प्रेम संभव नहीं है। जहां प्रेम है, वहां ईर्ष्या संभव नहीं है।
लेकिन प्रेम है ही नहीं। प्रेम के किनारे जाकर आदमी की नौका टूट जाती है। जो नौका बननी चाहिए थी, जिस पर हम यात्रा करते, वह टूट जाती है; क्योंकि हमने प्रेम को बिल्कुल ही गलत प्रारंभ से शुरू किया है।
पहली बात आपसे यह कहना चाहता हूं, पदार्थ के तल पर कोई प्रेम संभव नहीं है। वह इंपासीबिलिटी है। वह मेरी और आपकी असफलता नहीं है, वह मनुष्य-जाति, जीवन के लिए, असंभावना है। पदार्थ के तल पर कोई एकता उपलब्ध नहीं हो सकती।

जब यह एकता उपलब्ध नहीं होती, सब तरफ चिंता और विफलता दिखाई पड़ती है,
तो कुछ शिक्षक यह कहने लगते हैं कि यह प्रेम ही गलत है, यह प्रेम की बात ही गलत है, प्रेम का विचार ही गलत है! छोड़ो प्रेम के भाव को, उदासीन हो जाओ! जीवन को उदासी से भर लो, जीवन से प्रेम की सब जड़ें काट दो! यह दूसरी गलती है।
प्रेम गलत दिशा में गया था, इसलिए असफल हुआ है। प्रेम असफल नहीं हुआ, गलत दिशा असफल हुई है। लेकिन कुछ लोग इसका अर्थ लेते हैं कि प्रेम असफल हो गया!
तो अप्रेम की शिक्षाएं हैं--अपने प्रेम को सिकोड़ लो, बंद कर लो, अपने
से बाहर मत जाने दो! अपने से बाहर तो बंधन बनेगा, मोह बनेगा, आसक्ति बनेगा! अपने भीतर बंद कर लो! प्रेम को बाहर मत बहने दो! उदासीन जीवन के प्रति हो जाओ! प्रेम की खोज ही बंद कर दो! एक यह दिशा पैदा होती है। यह विफलता का ही परिणाम है, यह रिएक्शन है फ्रस्ट्रेशन का।
प्रेम की तरफ पीठ करके जाने वाले लोग उसी गलती में हैं, जिस गलती में प्रेम को शरीर के तल पर खोजने वाले लोग थे।
दिशा गलत थी, प्रेम की खोज गलत नहीं थी। लेकिन दिशा गलत है, यह नहीं दिखाई पड़ा! दिखाई पड़ा कि प्रेम की खोज ही गलत है। तो प्रेम से उदासीन शिक्षकों का जन्म हुआ, जिन्होंने प्रेम की निंदा की, प्रेम को बुरा कहा, प्रेम को बंधन बताया, प्रेम को पाप कहा; और व्यक्ति अपने में बंद हो जाए। लेकिन उन्हें इस बात का पता न रहा कि व्यक्ति जब प्रेम की संभावना छोड़ देगा, तो उसके पास सिर्फ अहंकार की संभावना शेष रह जाती है, और कुछ भी शेष नहीं रह जाता।
प्रेम अकेला तत्व है, जो अहंकार को तोड़ता और मिटाता है। प्रेम अकेला, अकेला रसायन है, जिसमें अहंकार गलता है और पिघलता है और बह जाता है।
जो लोग प्रेम से वंचित अपने को कर लेंगे, वे सिर्फ ईगोइस्ट हो सकते हैं, सिर्फ अहंकारी हो सकते हैं और कुछ भी नहीं। उनके पास अहंकार को गलाने और तोड़ने का कोई उपाय न रहा, कोई मार्ग न रहा।
प्रेम स्वयं के बाहर ले जाता है। प्रेम अकेला द्वार है, जिससे हम अपने बाहर निकलते हैं और अनंत की यात्रा पर चरण रखते हैं। प्रेम जो अन्य है, जो जगत है, जो जीवन है, उससे जोड़ता है।
लेकिन जो प्रेम की यात्रा बंद कर देते हैं, वे टूट कर सिर्फ अपने "मैं" में, अपने अहंकार में, अपने ईगो में कैद हो जाते हैं, बंद हो जाते हैं। एक तरफ विफल प्रेमी हैं, दूसरी तरफ अहंकार से भरे हुए साधु और संन्यासी! अहंकार इस बात की स्वीकृति है जैसा मैंने कहा।
प्रेम इस बात की खोज है कि मैं सबके साथ एकता खोज लूं, समष्टि के साथ
एक हो जाऊं। अहंकार इस बात का निर्णय है कि मैंने एकता खोजनी बंद कर दी। "मैं" मैं हूं। मैं अलग ही रहूंगा। मैं अपनी सत्ता से निश्चिंत हो गया हूं। मैंने मान लिया कि "मैं" मैं हूं। बूंद ने स्वीकार कर लिया कि सागर से मिलना असंभव है या मिलने की कोई जरूरत नहीं! यह बूंद जो अपने में बंद हो गई, यह भी आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकती। यह सिकुड़ गई, बहुत छोटी हो गई, बहुत क्षुद्र हो गई।
अहंकार क्षुद्र कर देता है, सिकोड़ देता है, बहुत छोटा बना देता है। आनंद विराट के साथ संभव है, क्षुद्र के साथ नहीं। आनंद अनंत के साथ संभव है, सीमित के साथ संभव नहीं। जहां सीमा है वहां दुख है, जहां सीमा नहीं वहां आनंद है।
जहां सीमा है, वहां अंत है, वहां मृत्यु है। जहां सीमा नहीं है, वह अनंत है, वहां अमृत है। क्योंकि जहां सीमा नहीं, वहां अंत नहीं, वहां मृत्यु नहीं।
अहंकारी क्षुद्र के साथ जुड़ जाता है। अपने को अलग मान कर ठहर जाता है; रुक जाता है, पिघलने से, बह जाने से, मिट जाने से; सबके साथ एक हो जाने से अपने को रोक लेता है!
मैंने सुना है, एक नदी समुद्र की तरफ यात्रा कर रही थी, जैसे कि सभी नदियां समुद्र की तरफ यात्रा करती हैं। भागी चली जा रही थी नदी समुद्र की तरफ। कौन खींचे लिए जाता था?

मिलन की कोई आशा, एक हो जाने की, विराट के साथ संयुक्त हो जाने की कोई कामना, किनारों को तोड़ देने की, सीमाओं को तोड़ देने की, तटहीन सागर के साथ एक हो जाने की कोई प्यास नदी को भगाए ले जा रही थी। नदियां भाग रही हैं। वह नदी भी भाग रही थी--कोई प्रेम।
जैसे प्रत्येक मनुष्य की चेतना भाग रही है, भाग रही है, अनंत के सागर
के साथ एक होने को, वैसी वह नदी भी भाग रही थी। लेकिन बीच में आ गया एक मरुस्थल। बड़ा था मरुस्थल। नदी उसमें खोने लगी। नदी दौड़ने लगी तेजी से-- संघर्ष करने लगी! तोड़ देगी! उसने पहाड़ तोड़े थे, उसने घाट तोड़े थे, उसने मार्ग बनाए थे। वह इस मरुस्थल में भी मार्ग बना लेगी। लेकिन महीनों बीत गए, सालों बीतने लगे, मार्ग नहीं बन पाता है। नदी मरुस्थल में खोती चली जाती है, रेत उसे पीती चली जाती है! राह नहीं बनती। और तब नदी घबड़ाई और रोने लगी।
उस मरुस्थल की रेत ने कहाः अगर हमारी सुनो तो एक बात स्मरण रखो। मरुस्थल को केवल वे ही नदियां पार कर सकती हैं, जो हवाओं के साथ एक हो जाती हैं, जो अपने को खो देती हैं और हवाओं के साथ एक हो जाती हैं। जो अपने को मिटा देती हैं। जैसे ही वे अपने को मिटाती हैं, हवाएं उन्हें अपने कंधों पर उठा लेती हैं और फिर मरुस्थल पार हो जाता है। मरुस्थल से लड़ कर कोई कभी पार नहीं होता। मरुस्थल के ऊपर उठ कर पार होता है। बहुत नदियां आई हैं इस मरुस्थल को पार करने, वे खो गईं। केवल वे ही नदियां उठ पाई हैं, जिन्होंने अपने को खो दिया, भाप हो गईं, हवाओं के कंधों पर उठ गईं, मरुस्थल को पार कर गईं।
लेकिन वह नदी कहने लगी, मैं मिट जाऊंगी? मैं मिटना नहीं चाहती हूं। मैं बनी रहना चाहती हूं।
तो सागर की रेत ने कहा कि अगर बनी रहना चाहोगी तो मिट जाओगी। और अगर मिट जाओगी, तो बनी भी रह सकती हो!
पता नहीं, उस नदी ने उस सागर की रेत की बात सुनी या नहीं। जरूर सुन ली होगी, क्योंकि नदियां आदमियों जैसी नासमझ नहीं होतीं। वह सवार हो गई होगी हवाओं के ऊपर। पार कर गई होगी, बादल बन गई होगी, उठ गई होगी ऊपर, उसने नई दिशा में यात्रा कर ली होगी।
लेकिन आदमी का अहंकार लड़-लड़ कर टूट जाता है, लेकिन मिटने को राजी नहीं होता। लड़ता है, टूटता है, लेकिन मिटने को राजी नहीं होता! जितना लड़ता है, उतना ही टूटता है, उतना ही नष्ट होता है। क्योंकि किससे हम लड़ रहे हैं? स्वयं की जड़ों से! किससे हम लड़ रहे हैं? स्वयं के ही विराट रूप से! किससे हम लड़ रहे हैं? स्वयं की ही सत्ता से! टूटेंगे, मिटेंगे, नष्ट होंगे--दुखी होंगे, पीड़ित होंगे, प्रेम से जो बचता है।
स्मरण रहे, प्रेम, मैंने कहा, एक हो जाने की आकांक्षा है। और एक वही हो सकता है, जो मिटने को राजी हो।
एक वही हो सकता है, जो मिटने को राजी हो।
जो मिटने को राजी नहीं होता, उसके लिए दूसरी दिशा खुल जाती है। वह अहंकार की दिशा है। तब वह अपने को बनाने को, मजबूत करने को, पुष्ट करने को, ज्यादा सख्त अपने आस-पास दीवाल उठाने को, किला बनाने को उत्सुक हो जाता है! अपने "मैं" को मजबूत करने की यात्रा में संलग्न हो जाता है।
प्रेमी असफल हो गए, क्योंकि शरीर के तल पर एकता खोजी। संन्यासी असफल
हो जाते हैं, क्योंकि अहंकार के तल पर अलग होने का निर्णय करते हैं। क्या कोई तीसरा मार्ग नहीं है?
उसी तीसरे मार्ग की आपसे बात कहना चाहता हूं।
अहंकार तो कोई मार्ग नहीं है। अहंकार तो दुख की दिशा है, अहंकार तो भ्रांति है। "मैं" जैसी कोई चीज ही नहीं है भीतर, सिवाय शब्द के। जब सब शब्द छूट जाते हैं और आदमी मौन होता है तो पाता है कि वहां कोई "मैं" नहीं है।
कभी मौन होकर देखें। कभी चुप होकर देखें, कभी शांत होकर देखेंगे, वहां फिर कोई "मैं" नहीं पाया जाता। वहां कोई "मैं" नहीं है। वहां एक्झिस्टेंस है, वहां सत्ता है, अस्तित्व है। लेकिन "मैं" नहीं है।

"मैं" मनुष्य की ईजाद है। "मैं" मनुष्य का आविष्कार है। बिल्कुल झूठा। उतना ही झूठा, जैसे हमारे नाम झूठे हैं।
क्यों?
कोई आदमी किसी नाम को लेकर पैदा नहीं होता। लेकिन जन्म के बाद हम नाम
दे देते हैं, ताकि दूसरे लोग उसे पुकार सकें, बुला सकें। नाम की उपयोगिता है, युटिलिटी है, लेकिन नाम की कोई सत्ता नहीं, कोई अस्तित्व नहीं। दूसरे लोग नाम लेकर बुलाते हैं, मैं खुद क्या कह कर अपने को बुलाऊं? तो मैं अपने को "मैं" कहकर बुलाता हूं। "मैं" खुद के लिए, खुद को पुकारने के लिए दिया गया नाम है। और नाम दूसरों को पुकारने के लिए दिए गए नाम हैं।
नाम भी उतना ही असत्य है, जितना "मैं" का भाव असत्य है।
लेकिन इसी "मैं" को हम--इसी "मैं" को मजबूत करते चले जाते हैं! "मैं" को मोक्ष चाहिए, "मैं" को परमात्मा चाहिए "मैं" को पद चाहिए, "मै" को मुक्ति चाहिए, "मै" को आनंद चाहिए, इसी "मैं" को सुख चाहिए! लेकिन "मैं" को कुछ भी नहीं मिल सकता है, क्योंकि "मैं" बिल्कुल झूठ है, "मैं" असत्य है। जो असत्य है, उसे कुछ भी नहीं मिल सकता है।
"मैं" भी असफल हो जाता है और प्रेम भी असफल हो जाता है। और दो ही दिशाएं है-एक प्रेम की दिशा है और एक अहंकार की दिशा है। मनुष्य के जगत में दो मार्गों के अतिरिक्त कोई तीसरा मार्ग नहीं है--एक "मैं" का, एक प्रेम का।
प्रेम असफल होता है, क्योंकि हम शरीर के तल पर खोजते हैं।
"मैं" असफल होता हैं, क्योंकि असत्य है।
तीसरा क्या हो सकता है? तीसरा यह हो सकता है कि हम "मैं" की सम्यक दिशा खोजें, प्रेम की सम्यक दिशा खोजें, और "मैं" की असम्यक दिशा से बचें।
प्रेम शरीर के तल पर नहीं, चेतना के तल पर घटने वाली घटना है।
शरीर के तल पर जब प्रेम को हम घटाने की कोशिश करते हैं, तो प्रेम आब्जेक्टिव हो जाता है। कोई पात्र होता है प्रेम का, उसकी तरफ हम प्रेम को बहाने की कोशिश करते हैं। वहां से प्रेम वापस लौट आता है, क्योंकि पात्र शरीर होता है, जो दिखाई पड़ता है, जो स्पर्श में आता है।
लेकिन प्रेम को अगर आत्मिक घटना बनानी है, अगर प्रेम को कांशसनेस बनाना है, चेतना बनाना है तो प्रेम आब्जेक्टिव नहीं रह जाता, सब्जेक्टिव हो जाता है। तब प्रेम एक संबंध नहीं, चित्त की एक दशा है, स्टेट ऑफ माइंड है।
बुद्ध एक सुबह बैठे हैं और एक आदमी आ गया है। वह बहुत क्रोध में है। उसने बुद्ध को बहुत गालियां दी हैं और फिर इतने क्रोध से भर गया है कि उसने बुद्ध के मुंह के ऊपर थूक दिया है! बुद्ध ने अपने चादर से वह थूक पोंछ लिया और उससे कहा, मित्र, कुछ और कहना है?
बुद्ध का भिक्षु आनंद पास बैठा है। वह क्रोध से भर गया है। और बुद्ध
की यह बात सुन कर कि वे कहते हैं कि कुछ और कहना है, वह और हैरान हो गया है। और उसने कहाः आप क्या कहते हैं? यह आदमी थूक रहा है और आप पूछते हैं, कुछ और कहना है!"
बुद्ध ने कहाः "मैं समझ रहा हूं, शायद क्रोध इतना भारी हो गया है कि शब्द कहने में असमर्थ मालूम होते होंगे, इसलिए उसने थूक कर कोई बात कही है। मैं समझ गया हूं, उसने कुछ कहा है। अब मैं पूछता हूं, और कुछ कहना है? वह आदमी उठ गया है, लौट गया है। पछताया है, रात भर सो नहीं सका है। दूसरे दिन सुबह क्षमा मांगने आया है। बुद्ध के चरणों में उसने सिर रख दिया। सिर उठाया, बुद्ध ने कहा, और कुछ कहना है?
वह आदमी कहने लगा, कल भी आप यही कहते थे!
बुद्ध ने कहाः आज भी वही कहता हूं। शायद कुछ कहना चाहते हो। शब्द कहने में असमर्थ हैं, इसलिए सिर पैरों पर रख कर कह दिया है। कल थूक कर कहा था। पूछता हूं, कुछ और कहना है?
वह आदमी बोलाः कुछ और नहीं, क्षमा मांगने आया हूं। रात भर सो नहीं सका। मन में यह ख्याल हुआ, आज तक आपका प्रेम मिला मुझे, आज थूक आया हूं आपके ऊपर, अब शायद वह प्रेम मुझे नहीं मिल सकेगा।

बुद्ध खूब हंसने लगे और उन्होंने कहाः सुनते हो आनंद, यह आदमी कैसी पागलपन की बातें कहता है! यह कहता है कि कल तक मुझे आपका प्रेम मिला और कल मैंने थूक दिया तो अब प्रेम नहीं मिलेगा! तो शायद यह सोचता है कि यह मेरे ऊपर नहीं थूकता था, इसलिए मैं इसे प्रेम करता था, जो थूकने से प्रेम बंद हो जाएगा!
पागल है तू! मैं प्रेम इसलिए करता हूं कि मैं प्रेम ही कर सकता हूं और कुछ नहीं कर सकता हूं। तू थूके, तू गाली दे, तू पैरों पर सिर रखे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं प्रेम ही कर सकता हूं। मेरे भीतर प्रेम का दीया जल गया। अब मेरे पास से जो भी निकले, उस पर प्रेम पड़ेगा। कोई न निकले तो एकांत में प्रेम का दीया जलता रहेगा। अब इसका किसी से कोई संबंध न रहा। अब यह कोई संबंध न रहा, यह मेरा स्वभाव हो गया है।
प्रेम जब तक किसी से संबंध है, तब तक, आप शरीर के तल पर प्रेम खोज रहे हैं, जो असफल हो जाएगा।
प्रेम जब जीवन के भीतर, स्वयं के भीतर जला हुआ एक दीया बनता है-- रिलेशनशिप नहीं, स्टेट ऑफ माइंड--जब किसी से प्रेम एक संबंध नहीं है, बल्कि मेरा प्रेम स्वभाव बनता है, तब, तब जीवन में प्रेम की घटना घटती है।
तब प्रेम का असली सिक्का हाथ में आता है। तब यह सवाल नहीं है कि किससे प्रेम, तब यह सवाल नहीं है कि किस कारण प्रेम। तब प्रेम अकारण है, तब प्रेम इससे--उससे नहीं है, तब प्रेम है। कोई भी हो तो प्रेम के दीये का प्रकाश उस पर पड़ेगा। आदमी हो तो आदमी, वृक्ष हो तो वृक्ष, सागर हो तो सागर, चांद हो तो चांद, कोई न हो तो फिर एकांत में प्रेम का दीया जलता रहेगा।
प्रेम परमात्मा तक ले जाने का द्वार है। लेकिन जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह सिर्फ नरक तक ले जाने का द्वार बनता है। जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह पागलखानों तक ले जाने का द्वार बनता है। जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह कलह, द्वंद्व, संघर्ष, हिंसा, क्रोध, घृणा, इन सबका द्वार बनता है। वह प्रेम झूठा है।
जिस प्रेम की मैं बात कर रहा हूं, वह प्रभु तक ले जाने का मार्ग बनता है, लेकिन वह प्रेम संबंध नहीं है। वह प्रेम स्वयं के चित्त की दशा है, उसका किसी से कोई नाता नहीं, आपसे नाता है। इस प्रेम के संबंध में थोड़ी बात समझ लेनी, और इस प्रेम को जगाने की दिशा में कुछ स्मरणीय बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बात, जब तक आप प्रेम को एक संबंध समझते रहेंगे, एक रिलेशनशिप, तब
तक आप असली प्रेम को उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। वह बात ही गलत है। वह प्रेम की परिभाषा ही भ्रांत है।
जब तक मां सोचती है कि बेटे से प्रेम, मित्र सोचता है मित्र से प्रेम, पत्नी सोचती है पति से प्रेम, भाई सोचता है बहन से प्रेम, जब तक संबंध की भाषा में कोई प्रेम को सोचता है, तब तक उसके जीवन में प्रेम का जन्म नहीं हो सकता है।
संबंध की भाषा में नहीं, किससे प्रेम नहीं; मेरा प्रेमपूर्ण होना। मेरा प्रेमपूर्ण होना अकारण, असंबंधित, चौबीस घंटे मेरा प्रेमपूर्ण होना। किसी से बंध कर नहीं, किसी से जुड़ कर नहीं, मेरा अपने आपमें प्रेमपूर्ण होना। यह प्रेम मेरा स्वभाव, मेरी श्वास बने। श्वास आए, जाए, ऐसा मेरा प्रेम--चौबीस घंटे सोते, जागते, उठते हर हालत में। मेरा जीवन प्रेम की एक भाव-दशा, एक लविंग एटिट्यूड, एक सुगंध, जैसे फूल से सुगंध गिरती है।
किसके लिए गिरती है? राह से जो निकलते हैं, उनके लिए? फूल को शायद पता
भी न हो कि कोई राह से निकलेगा। किसके लिए, जो फूल को तोड़ कर माला बना लेंगे और भगवान के चरणों में चढ़ा देंगे, उनके लिए? किसके लिए--फूल की सुगंध किसके लिए गिरती है?
किसी के लिए नहीं। फूल के अपने आनंद से गिरती है। फूल के अपने खिलने
से गिरती है। फूल खिलता है, यह उसका आनंद है। सुगंध बिखर जाती है।
दीये से रोशनी बरसती है, किसके लिए? कोई अंधेरे रास्ते पर न भटक जाए इसलिए? किसी को रास्ते के गड्ढे दिखाई पड़ जाएं इसलिए?

दिखाई पड़ जाते होंगे, यह दूसरी बात है; लेकिन दीये की रोशनी अपने लिए, अपने आनंद से, अपने स्वभाव से, गिरती और बरसती है।
प्रेम भी आपका स्वभाव बने--उठते, बैठते, सोते, जागते; अकेले में, भीड़ में, वह बरसता रहे फूल की सुगंध की तरह, दीये की रोशनी की तरह, तो प्रेम प्रार्थना बन जाता है, तो प्रेम प्रभु तक ले जाने का मार्ग बन जाता है, तो प्रेम जोड़ देता है समस्त से, सबसे, अनंत से।
इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रेम तब संबंध नहीं बनेगा। वैसा प्रेम चौबीस घंटे संबंध बनेगा, लेकिन संबंधों पर सीमित नहीं होगा। उसके प्राण संबंधों के ऊपर से आते होंगे। गहरे से आते होंगे। तब भी पत्नी पत्नी होगी, पति पति होगा, पिता पिता होगा, मां मां होगी। तब भी बेटे पर प्रेम गिरेगा। लेकिन बेटे के कारण नहीं, मां के अपने प्रेम के कारण। तब भी पत्नी का प्रेम चलेगा, बहेगा; लेकिन पति के कारण नहीं, अपने कारण। काजिलिटी भीतर होगी, भीतर से आएगा और बहेगा। बाहर से कोई खींचेगा और बहेगा नहीं, भीतर से आएगा और बहेगा। वह अंतरभाव होगा, बाहर से खींचा गया नहीं।
अभी हम सब बाहर से खींचे गए प्रेम पर जी रहे हैं, इसलिए वह प्रेम कलह
बन जाता है। जो भी चीज जबरदस्ती खींची गई है, वह दुख और पीड़ा बन जाती है। जो भीतर से स्पांटेनियस, सहज प्रकट हुई है, वह बात और हो जाती है। वह बात ही और हो जाती है। तब जीवन बहुत प्रेमपूर्ण होगा, लेकिन प्रेम एक संबंध नहीं। साधक को स्मरण रखना है कि प्रेम उसकी चित्त दशा बने तो ही प्रभु के मार्ग पर, सत्य के मार्ग पर यात्रा की जा सकती है, तो ही उसके मंदिर तक पहुंचा जा सकता है।
पहली बात, संबंध में प्रेम के भाव को भूल जाएं। वह परिभाषा गलत है, वह प्रेम को देखने का ढंग गलत है। जब कोई गलत ढंग गलत दिखाई पड़ जाए, तो फिर ठीक ढंग देखा जा सकता है। तो पहली बात है, जो फाल्स लव है, वह जो झूठा प्रेम है, जो संबंध को प्रेम समझता है, उसकी व्यर्थता को समझ लें। वह सिवाय असफलता के और चिंता के कहीं भी नहीं ले जाएगा।
फिर दूसरी बात है। वह दूसरी बात यह है कि क्या आपके भीतर से प्रेम का जन्म हो सकता है? भीतर से! बाहर कोई भी न हो तो भी? हो सकता है। जब भी प्रेम का जन्म हुआ है तो वैसे ही हुआ है।
हमारे भीतर वह छिपा है बीज, जो फूट सकता है, लेकिन हमने कभी उस पर ध्यान नहीं दिया! हम संबंध वाले प्रेम पर ही जीवन भर संघर्ष करते रहे हैं। हमने कभी ध्यान नहीं दिया उसके--उसके पार भी कोई प्रेम की संभावना है, कोई रूप है। हम हमेशा रेत से तेल निकालने की कोशिश करते रहे हैं। रेत से तो तेल नहीं निकला, निकल नहीं सकता था, लेकिन रेत से तेल निकालने में हम भूल ही गए कि ऐसे बीज भी थे, जिनसे तेल निकल सकता था।
हम सब संबंध वाले प्रेम से जीवन को निकालने की कोशिश कर रहे हैं! वहां
से नहीं निकला है, नहीं निकलेगा, लेकिन समय खोता है, शक्ति खोती है। और जहां से निकल सकता था, उस तरफ ध्यान भी नहीं जाता है!
प्रेम चित्त की एक दशा की तरह पैदा होता है। बस वैसा ही पैदा होता है।
जब भी पैदा होता है, वैसा ही पैदा होता है। उसे कैसे पैदा करें, वह कैसे जन्म ले ले, वह बीज कैसे टूट जाए और अंकुरित हो जाए? तीन बातें, तीन सूत्र इस संबंध में स्मरण रख लेने चाहिए।
पहली बात, जब अकेले में हों तब-तब भीतर खोज करें, क्या मैं प्रेमपूर्ण
हो सकता हूं? जब कोई न हो, तब खोज करें, क्या मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूं? क्या अकेले में लविंग--क्या अकेले में, एकांत में भी मेरी आंखें ऐसी हो सकती हैं, जैसे प्रेम-पात्र मौजूद हो? क्या अकेले में, शून्य में, एकांत में, खाली में भी मेरे प्राणों से प्रेम की धाराएं उस रिक्त स्थान को भर सकती हैं, जहां कोई नहीं, कोई पात्र नहीं, कोई आब्जेक्ट नहीं? क्या वहां भी प्रेम मुझसे बह सकता है? इसको ही मैं प्रार्थना कहता हूं। उनको नहीं प्रार्थना कहता कि हाथ जोड़े मंदिरों में बैठे हैं!
एकांत में जो प्रेम को बहाने में सफल हो रहा है, कोशिश कर रहा है, वह प्रार्थना में है, वह प्रेयरफुल मूड में है।

तो अकेले में बैठ कर देखें कि क्या मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूं? लोगों
के साथ प्रेमपूर्ण होकर बहुत देख लिया होगा आपने। अब अकेले में थोड़ी खोज करें, क्या मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूं?
पहला सूत्र, एकांत में प्रेमपूर्ण होने का प्रयोग करें, खोजें, टटोलें अपने भीतर। हो जाएगा, होता है, हो सकता है। जरा भी कठिनाई नहीं है। कभी प्रयोग ही नहीं किया उस दिशा में, इसलिए ख्याल में बात नहीं आ पाई है। निर्जन में भी फूल खिलते हैं और सुगंध फैला देते हैं।
निर्जन में, एकांत में प्रेम की सुगंध को पकड़ें। जब एक बार एकांत में प्रेम की सुगंध पकड़ जाएगी तो आपको ख्याल आ जाएगा कि प्रेम कोई रिलेशनशिप नहीं, कोई संबंध नहीं।
प्रेम स्टेट ऑफ माइंड है, स्टेट ऑफ कांशसनेस है, चेतना की एक अवस्था है।
दूसरी बात, दूसरा सूत्र, मनुष्य इतर जगत में प्रेम का प्रयोग करे। एक पत्थर को भी हाथ में उठाएं तो ऐसे, जैसे किसी को प्रेम कर रहे हों। एक पहाड़ को भी देखें तो ऐसा, जैसा अपने प्रेमी को देख रहे हों। मनुष्य इतर जगत में दूसरा। पहला एकांत में, दूसरा मनुष्य इतर जगत में। पत्थर को, रेत को, सागर को देखें तो ऐसा, जैसा प्रेमी को। प्रेम बहा चला जाए, आंख खो जाए। कुर्सी को भी छुएं, भोजन की थाली को भी उठाएं तो ऐसे जैसे प्रेमी को स्पर्श कर रहे हों।
मनुष्य इतर जगत में क्यों? क्योंकि मनुष्य को जब भी आप प्रेम करते हैं, तो वहां से उत्तर आता है। उत्तर आया कि रिलेशनशिप खड़ी हो जाती है, संबंध खड़ा हो जाता है। पत्थर को छुएंगे तो कोई उत्तर नहीं आएगा। सागर को देखेंगे प्रेम से तो सागर कोई उत्तर नहीं देगा, आपके गले में बांहें नहीं डाल देगा और कहेगा, मैं भी आपको प्रेम करता हूं। कोई उत्तर नहीं आएगा, प्रेम निरुत्तर छूट जाएगा। उस तरफ से कोई जवाब नहीं आने वाला है। आप प्रेम करेंगे और प्रेम छूट जाएगा।
जवाब की आकांक्षा के कारण प्रेम मुक्त नहीं हो पाता, संबंध बना रहता है। एक व्यक्ति को मैं प्रेम करता हूं, फिर मैं अपेक्षा करता हूं, उत्तर आना चाहिए। जब उत्तर नहीं आता है तो फ्रस्ट्रेशन आता है, दुख आता है, पीड़ा आती है, चिंता आती है।
निरुत्तर प्रेम की संभावना बढ़नी चाहिए। लेकिन निरुत्तर प्रेम की पहली संभावना मनुष्य को छोड़ कर ही हो सकती है। मनुष्य के साथ एकदम प्रयोग करने आसान नहीं है। वृक्षों के साथ हो सकती है, के साथ हो ाकती है। पत्थरों के साथ हो सकती है। सागरों के साथ हो सकती है। इसलिए प्रकृति में जो कुछ भी है, उस पर प्रेम को भेजें। वहां अपेक्षा नहीं, वहां एक्सपेक्टेशन नहीं हो सकता है कि आप राह देखेंगे, उत्तर आएगा। उत्तर न आएगा, आपका प्रेम ही जाएगा। और आपको पहली दफा पता चलेगा, उत्तर के लिए नहीं है प्रेम।
प्रेम दान है, मांग नहीं। प्रेम देना है, लौटाना नहीं।
प्रेम का आनंद दे देने में है, प्रेम का आनंद पा लेने में नहीं।
यह दूसरा सूत्र जब स्पष्ट हो जाएगा कि प्रेम दान है, मांग नहीं। कोई उत्तर की अपेक्षा नहीं है, कोई रिस्पांस की जरूरत नहीं है। हमने दे दिया और सागर ने स्वीकार कर लिया तो धन्यवाद है सागर का। और पत्थर ने स्वीकार कर लिया तो धन्यवाद है पत्थर का। लौटते उत्तर का कोई सवाल नहीं है। तो यह दूसरा सूत्र स्पष्ट करेगा आपके भीतर उस संभावना को कि प्रेम एक चित्त की दशा है, उत्तर नहीं है। तो कोई संबंध नहीं बनता है।
फिर तीसरी बात--पहला एकांत, दूसरा मनुष्य इतर जगत, तीसरा असंबंधित मनुष्यता।
जिनसे आप संबंधित हैं, उन पर नहीं; जिनसे आप बिल्कुल असंबंधित हैं, जिनसे कुछ लेना-देना नहीं--राह चलते लोग, ट्रेन में बैठे हुए लोग, बस में बैठे हुए लोग, जिनसे कोई संबंध नहीं है, जिनसे कोई नाता नहीं है, उनके प्रति प्रेम। पड़ोस में कोई आपके बैठ गया है बस में आकर, उसके प्रति प्रेम-अपरिचित के, अनजान के, स्ट्रेंजर के प्रति।

तीसरे सूत्र में, अजनबी के प्रति प्रेम। क्योंकि अजनबी के प्रति प्रेम, एक बात ही और है। परिचित के प्रति प्रेम बात और है।
परिचित के प्रति प्रेम अपेक्षाओं से भरा है, संबंधों से भरा है। उसने
कल कुछ किया था, उसके कारण प्रेम है, वह कल कुछ करेगा, इस कारण प्रेम है। उनका--उस प्रेम के पीछे लाभ-हानियां जुड़ी हैं, उस प्रेम के पीछे याददाश्तें जुड़ी हैं, अतीत जुड़ा है, भविष्य जुड़ा है। अजनबी से कोई संबंध नहीं है कल का, आने वाले कल का भी कोई संबंध नहीं है। उससे प्रेम निपट प्रेम है। उसके आगे-पीछे कोई लाभ-हानि नहीं है, कोई उपाय नहीं है, कोई मार्ग नहीं है। उसे हम जानते भी नहीं हैं, वह कहां विराट जगत में कल खो जाएगा, कुछ पता नहीं है।
अजनबी के प्रति प्रेम, असंबंधित मनुष्यता के प्रति प्रेम, तीसरा सूत्र है। अगर आपको अपने भीतर उस प्रेम को पैदा कर लेना है, जिसे मैं स्टेट ऑफ माइंड कह रहा हूं, जिसे मैं चित्त की दशा कह रहा हूं। तो ये तीन सूत्र। और जब आप पत्थरों को प्रेम कर पाएंगे, सागर को प्रेम कर पाएंगे, एकांत
को प्रेम कर पाएंगे, अजनबी को प्रेम कर पाएंगे, तो जो निकट है, जो संबंधित है, उसे प्रेम नहीं कर पाएंगे? उसे तो प्रेम कर ही पाएंगे, वह तो सहज बह जाएगा। ये तीन की तैयारी हो तो उसे तो प्रेम कर ही पाएंगे, उसे तो बहुत प्रेम उपलब्ध हो जाएगा।
लेकिन उसके प्रेम में भी क्रांतिकारी फर्क हो जाएगा, क्योंकि जिसने एकांत को प्रेम किया, जिसने पत्थरों को प्रेम किया, जिसने अजनबियों को प्रेम किया, उसके प्रेम की क्वालिटी, उसके प्रेम का गुण बदल जाएगा। वह संबंधित को--मां बेटे को प्रेम करेगी तो भी ऐसे जैसे एकांत को करती हो, ऐसे जैसे पत्थर को करती हो, उत्तर की कोई अपेक्षा नहीं। ऐसे जैसे अजनबी को करती हो, जो कल भटक जाएगा तो कोई पीड़ा नहीं छोड़ जाएगा। तब पत्नी पति को प्रेम करेगी, पति पत्नी को प्रेम करेगा, लेकिन उस प्रेम की क्वालिटी, उस प्रेम का गुण-धर्म बदल जाएगा। उस प्रेम में कोई अपेक्षा नहीं, कोई मांग नहीं, कोई ईर्ष्या नहीं, कोई द्वेष नहीं, कोई कलह नहीं, कोई छीना-झपट नहीं। वह प्रेम तब एक सहज दान हो जाता है, और यह सहज दान जितना बढ़ता चला जाए, जितना बढ़ता चला जाए, उतना ही व्यक्ति का अहंकार नष्ट हो जाता है, विलीन हो जाता है।
प्रेम अहंकार की मृत्यु है।
प्रेम अहंकार की मृत्यु है--और जहां अहंकार नहीं, वहां हम हो गए एक समस्त से, वहां हम जुड़ गए विराट से, वहां परमात्मा से मिलन हो गया। उस मिलन की प्यास है, उस मिलन की दौड़ है, उस मिलन की आकांक्षा है। बूंद सागर से टूट गई-सागर होना चाहती है। रेत हवाओं में उड़ गया कण--अपने तट पर वापस लौट आना चाहता है। ऐसा ही एक-एक मनुष्य का व्यक्तित्व वापस लौट आना चाहता है प्रभु के सागर में।
हमने अब तक जो उपाय किए हैं, वे सब उपाय गलत साबित हुए हैं। या तो हमने झूठे प्रेम का उपाय किया है, या हमने अहंकार का उपाय किया है। वे दोनों उपाय व्यर्थ हैं।
सम्यक प्रेम, राइट लव, क्या होगा--उस दिशा में मैंने तीन सूत्र कहे हैं। इनका प्रयोग करें, ताकि आपके भीतर वह प्रेम जन्म पा सके, जो आपका है, जो आपका स्वभाव है, जो आपकी श्वास-श्वास है। तब आप जो भी छुएंगे, तब आप जो भी देखेंगे, तब आप जो भी सुनेंगे, वह सभी प्रेम-पात्र, वह सभी प्रीतम बन जाएगा, वह सभी बिलॅविड बन जाएगा। और जिस दिन सारा जीवन प्रीतम बन जाता है, उस दिन मनुष्य प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट होता है, उसके पहले नहीं। उसके पहले नहीं, उसके पहले कभी नहीं। जिस दिन सारा जीवन प्रीतम बन जाता है, उस दिन सारी खबरें उसकी ही खबरें हो जाती हैं उस दिन।
लेकिन यह कोई आसमान से नहीं घट जाएगी घटना। यह प्रत्येक को अपने भीतर पात्रता, प्रत्येक को अपने भीतर द्वार, प्रत्येक को अपने भीतर एक ओपनिंग, प्रत्येक को अपने भीतर के फूल को खिला लेना है, तो यह घटना घट सकती है। यह तीसरा सूत्र है।
चित्त को विस्मय से भरें, जीवन के रस में तल्लीन हों और आत्मा को प्रेमपूर्ण करें। फिर इन तीन सीढ़ियों को पार करें और देखें कि क्या हो

जाता है? अनंत संपदा है मनुष्य को पाने के लिए। अनंत आनंद उसे उपलब्ध हो सकता है। लेकिन हम व्यर्थ ही जीते और नष्ट हो जाते हैं!
एक छोटी सी घटना अपनी बात मैं पूरी करूं। फिर हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे।
एक राजधानी में एक भिखारी एक सड़क के किनारे बैठ कर बीस-पच्चीस वर्षों
तक भीख मांगता रहा। फिर मौत आ गई, फिर मर गया। जीवन भर यही कामना की कि मैं भी सम्राट हो जाऊं। कौन भिखारी ऐसा है, जो सम्राट होने की कामना नहीं करता? जीवन भर हाथ फैलाए खड़ा रहा रास्तों पर।
लेकिन हाथ फैलाकर, एक-एक पैसा मांग कर कभी कोई सम्राट हुआ है? मांगने वाला कभी सम्राट हुआ है? मांगने की आदत जितनी बढ़ती है, उतना ही बड़ा भिखारी हो जाता है। सम्राट कैसे हो जाएगा? तो पच्चीस वर्ष पहले छोटा भिखारी था, पच्चीस वर्ष बाद पूरे नगर में प्रसिद्ध भिखारी हो गया था, लेकिन सम्राट नहीं हुआ था। फिर मौत आ गई। मौत कोई फिकर नहीं करती। सम्राटों को भी आ जाती है, भिखारियों को भी आ जाती है। और सच्चाई शायद यही है कि सम्राट थोड़े बड़े भिखारी होते हैं, भिखारी जरा छोटे सम्राट होते हैं। और क्या फर्क होता होगा!
वह मर गया भिखारी तो गांव के लोगों ने उसकी लाश को उठवा कर फिंकवा दिया। फिर उन्हें लगा कि पच्चीस वर्ष एक ही जगह बैठ कर भीख मांगता रहा। सब जगह गंदी हो गई। गंदे चीथड़े फैला दिए हैं। टीन-टप्पर, बर्तन-भांडे फैला दिए हैं। सब फिंकवा दिया। फिर किसी को ख्याल आया कि पच्चीस वर्ष तक जमीन भी गंदी कर दी। थोड़ी जमीन भी उखाड़ कर थोड़ी मिट्टी भी साफ कर दो। ऐसा ही सब व्यवहार करते हैं, मर गए आदमी के साथ। भिखारियों के साथ ही करते हों, ऐसा नहीं। जिनको प्रेमी कहते हैं, उनके साथ भी यही व्यवहार होता है। उखाड़ दी, थोड़ी मिट्टी भी खोद डाली।
मिट्टी खोदी तो नगर दंग रह गया। भीड़ लग गई। सारा नगर वहां इकट्ठा हो गया। वह भिखारी जिस जगह बैठा था, वहां बड़े खजाने गड़े हुए थे। सब कहने लगे, कैसा पागल था! मर गया पागल, भीख मांगते-मांगते! जिस जमीन पर बैठा था, वहां बड़े हंडे गड़े हुए थे, जिनमें बहुमूल्य हीरे-जवाहरात थे, स्वर्ण अशर्फियां थीं! वह सम्राट हो सकता था, लेकिन उसने वह जमीन न खोदी, जिस पर वह बैठा हुआ था! वह उन लोगों की तरफ हाथ पसारे रहा, जो खुद ही भिखारी थे, जो खुद ही दूसरों से मांग-मांग कर ला रहे थे! वे भी अपनी जमीन नहीं खोदे होंगे। उसने भी अपनी जमीन नहीं खोदी! फिर गांव के लोग कहने लगे, बड़ा अभागा था!
मैं भी उस गांव में गया था। मैं भी उस भीड़ में खड़ा था। मैंने लोगों से कहा, उस अभागे की फिकर छोड़ो। दौड़ो अपने घर, अपनी जमीन तुम खोदो। कहीं वहां कोई खजाना तो नहीं? पता नहीं, उन गांव के लोगों ने सुना कि नहीं! आपसे भी यही कहता हूं--अपनी जमीन खोदो, जहां खड़े हैं, वहीं खोद लें। कहता हूं, वहां खजाना हमेशा है!
लेकिन हम सब भिखारी हैं और कहीं मांग रहे हैं! प्रेम के बड़े खजाने भीतर हैं, लेकिन हम दूसरों से मांग रहे हैं कि हमें प्रेम दो! पत्नी पति से मांग रही है, मित्र-मित्र से मांग रहा है कि हमें प्रेम दो! जिनके पास खुद ही नहीं है, वे खुद दूसरों से मांग रहे हैं, कि हमें प्रेम दो! हम उनसे मांग रहे हैं! भिखारी भिखारियों से मांग रहे हैं! इसलिए दुनिया बड़ी बुरी हो गई है। लेकिन अपनी जमीन पर, जहां हम खड़े हैं, कोई खोदने की फिकर नहीं करता!
वह कैसे खोदा जा सकता है, वह थोड़ी सी बात मैंने कही हैं। वहां खोदें, वहां बहुत खजाना है और प्रेम का खजाना खोदते-खोदते ही एक दिन आदमी परमात्मा के खजाने तक पहुंच जाता है। और कोई रास्ता न कभी था, न है, और न हो सकता है। यह तीसरे सूत्र की बात पूरी हुई।
अब हम सब सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। सुबह के ध्यान में बैठने के पहले एक बात और आपसे कह देनी है। दोपहर साढ़े तीन से साढ़े चार तीन दिन तक हमने बातचीत की शब्दों से। मैंने आपसे कुछ कहा; किसी ने सुना होगा, किसी ने नहीं सुना होगा; किसी ने सुन कर भी समझ लिया होगा, किसी ने सुन कर भी नहीं समझा होगा। शब्दों की अपनी सीमा है, अपनी सामर्थ्य है। शब्द उसे कहने में असमर्थ हैं, जो दिखाई पड़ता है, जो अनुभव होता है। इशारे भर किए जा सकते हैं। इशारे चूक भी सकते हैं।

तो दोपहर आज बिना शब्द के थोड़ी देर बात करेंगे। दोपहर आज थोड़ा साइलेंट कम्युनिकेशन के लिए, थोड़ा मौन-संभाषण के लिए बैठेंगे। साढ़े तीन बजे आकर मैं यहां बैठ जाऊंगा। आप भी चुपचाप आकर बैठ जाएंगे। घंटे भर कोई बात नहीं होगी। बस चुपचाप बैठेंगे। कोई बातचीत नहीं होगी।
ऐसे बातचीत मैं करूंगा, अगर आप तैयार रहें तो शायद कुछ आपको सुनाई पड़े, कुछ पता चले। लेकिन शब्द से कोई बात नहीं होगी। एक घंटा चुपचाप यहां बैठे रहना है। जैसी आपकी मौज हो-बैठ जाना है। किसी को लेटना हो, लेट जाना; किसी को वृक्ष से टिकना हो, टिक जाना। आंख बंद रखनी हो, बंद रखनी; खुली रखनी हो, खुली रखनी। बस, एक भी बात नहीं होगी। आपस में भी नहीं कोई बात होगी। मुझसे भी कोई बात नहीं होगी। चुपचाप यहां आपके पास बैठूंगा। घंटे भर देखें। शायद चुपचाप होने में कुछ आपको सुनाई पड़े, कोई संबंध हो जाए।
जीवन के सब संबंध मौन में होते हैं।
शब्द तोड़ते हैं, मौन जोड़ता है।
तो इस प्रयोग को यहां आज आखिरी दिन है, फिर आज तो विदा हो जाएंगे, इसलिए घंटे भर मौन में बैठेंगे, एक मौन संभाषण के लिए।
तैयारी चाहिए मौन के लिए थोड़ी। तो साढ़े तीन बजे यहां आएंगे। ढाई बजे
से आप थोड़ी वहां तैयारी करना। ढाई बजे से ही थोड़ा चुप हो जाना शुरू कर देना, क्योंकि विचार का मूवमेंटम होता है। एक चके को हम चला दें, फिर छोड़ दें तो भी पंद्रह-बीस मिनट तक वह चका चलता चला जाता है, चलता चला जाता है। ढाई बजे से आप शिथिल छोड़ देना बात करने को, तो शायद साढ़े तीन बजे तक थोड़ी चुप्पी आ पाए। तो उसकी थोड़ी तैयारी करना।
अच्छा हो कि स्नान करके आएं, साढ़े तीन बजे जब यहां आएं, ताजे वस्त्र पहन कर आएं, ताकि एक बिल्कुल नई दिशा में गति हो सके। फिर वहां से आएं तो रास्ते में भी बात करते हुए न आएं। यहां भी कोई बात न करे। ऐसा ही समझें कि आप अकेले आ गए हैं। किसी की फिकर न करें कि कौन है, कौन नहीं है। चुपचाप बैठ जाएं। इधर आके मैं साढ़े तीन बजे बैठ जाऊंगा। चुपचाप घंटे भर हम बैठे रहेंगे।
किसी को आंसू आ जाएं तो रो ले, किसी को हंसी आ जाए तो हंस ले। कोई भी
भाव उठ जाए तो बह जाने दें; जरा भी बाधा न डालें, जरा भी रोकें नहीं। किसी को मन हो जाए तो दो क्षण मेरे पास आकर बैठ जाए फिर चुपचाप उठ कर चला जाए। किसी को मन हो तो निश्चित उठ कर आ जाए, उसे रोकें नहीं। लेकिन दो मिनट मेरे पास बैठे, ज्यादा नहीं, ताकि फिर कोई और आना चाहे, तो आ जाए। फिर चुपचाप ही बैठे और चला जाए। एक घंटे। किसी का मन बीच में ऊब जाए, तो चुपचाप उठे और चला जाए। जबरदस्ती न बैठा रहे। एक घंटे बाद मैं उठ जाऊंगा। फिर धीरे-धीरे जब जिसकी मौज हो, वह उठता हुआ चला जाए। चला जाए, वह एक घंटे के लिए हम बैठेंगे, उसकी तैयारी करके आएं।
शब्दों को समझने के लिए उतनी तैयारी की जरूरत नहीं होती। मौन को समझने के लिए बहुत तैयारी की जरूरत है। लेकिन मेरी कोशिश है कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे जो लोग मेरे निकट आते हैं, वे केवल शब्द ही न समझें, वे मौन को भी समझना शुरू करें। क्योंकि आज नहीं कल, जो और जरूरी बातें मुझे आपसे कहनी हैं, वे शब्दों से नहीं कही जा सकती हैं, वे तो फिर सिर्फ मौन से ही कही जाएंगी। तो जो मौन को समझने में समर्थ होने लगेंगे, फिर जो और गहरी बातें हैं, उनके कहने का द्वार उनसे खुल जाएगा।
तो वह ढाई बजे से आप तैयारी करेंगे, साढ़े तीन बजे जैसे कोई मंदिर में जाता हो--और मौन से बड़ा कोई मंदिर नहीं है। उतनी पवित्रता से, स्नान करके, ताजे कपड़े पहन कर, चुपचाप ढाई बजे से ही तैयारी में-कि उसकी धुन भीतर घुस जाए। फिर यहां आकर चुपचाप बैठ जाना है। फिर यहां जैसा भी मन हो। इंडोनेशिया में ध्यान का एक प्रयोग होता है, उसका नाम है, लातिहान। आज नहीं कल इस मुल्क में भी उस प्रयोग को मैं लाना चाहता हूं कि वह यहां आ जाए।
लातिहान में दो-चार दस लोग चुपचाप बैठ जाते हैं। चुपचाप बैठे रहते हैं। फिर किसी को रोने का हो आता है, तो रो लेता है। किसी को नाचने का हो आता है, नाच लेता है। और एक घंटे क ी लातिहान की बैठक के बाद जो अनुभव उन्हें होते हैं, उनका कोई हिसाब नहीं! छोड़ देते हैं, बिल्कुल रिलैक्स, जो

होना है, होता है। हाथ-पैर हिलते हैं तो हिलते हैं। उठने का मन होता है, तो उठते हैं। बैठने का मन होता है, बैठते हैं। लेटने का मन होता है, लेटते हैं। छोड़ देते हैं पूरा परमात्मा के चरणों में। प्रभु के चरणों में समर्पण कर देते हैं, जो कराना होगा, कराएगा। नहीं कराना होगा, नहीं कराएगा। उसके अदभुत परिणाम हैं, गहरे परिणाम हैं, जीवन-क्रांति के लिए। तो एक घंटे का दोपहर जो हम प्रयोग कर रहे हैं, उसमें बिल्कुल छोड़ देना है, एक समर्पण का भाव कि अब मैं हूं ही नहीं। अब एक घंटे जो होगा, होगा। आंसू आ जाएंगे तो रोकने नहीं है। बहेंगे, बह जाएंगे। जो होगा, होगा। और किसी को भी लगे कि दो क्षण मेरे पास आना है, तो मेरे पास आकर बैठ जाएगा।
समझेगा कि उसे मैंने बुलाया है। चुपचाप फिर उठ कर चला जाएगा। कोई बात नहीं होगी। वह साढ़े तीन बजे यहां आ जाना है।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठें। अभी मेरी जो बात इतनी सुनी है, उसने जरूर भाव बना दिया होगा। थोड़े दूर-दूर हो जाएं। कोई किसी को छूता हुआ न हो। चुपचाप बिना बात किए हुए थोड़े फासले पर हट जाएं...
ठीक है, हट जाएं अलग-अलग। मौन बैठ जाएं। आज सुबह की तो यह अब अंतिम बैठक होगी।
फिर यह सागर की आवाज सुनाई पड़े, न पड़े। फिर इन वृक्षों से मिलना हो, न हो। फिर यह दिन आए, न आए। यह सुबह आए, न आए। इसलिए जो मौजूद है, उसमें पूरी तल्लीनता को, पूरे आनंद को, पूरे प्रेम को उपलब्ध हो जाना चाहिए।
शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख आहिस्ता से बंद कर लें। आंख धीमे से बंद कर लें। शरीर को शिथिल छोड़ दें। अब हम ध्यान में प्रविष्ट होते हैं। मौन सुनते रहना है हवाओं की आवाज, पक्षियों के गीत, सागर का गर्जन...
मौन सुनते रहना है। बस चुपचाप सुनते रहें, सुनते रहें। यह धूप, ये किरणें, ये हवाएं; ये सब मिल कर कोई एक अदभुत अवसर पैदा कर रहीं हैं। उसमें सम्मिलित हो जाएं। इस धूप के साथ, इन हवाओं के साथ एक हो जाएं।
चुपचाप सुनते रहें। सुनते ही सुनते मन शांत और मौन होता जाएगा। सुनते
ही सुनते मन शांत और मौन होता जाएगा। सुनें... देखें पक्षी भी बोलने को आ जाते हैं। सुनें... दस मिनट के लिए सिर्फ सुनते रह जाएं। सुनें... सुनते ही सुनते मन शांत होता जाता है। सुनते ही सुनते मन शांत होता जाता है। मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। सुनते रहें हवाओं को, पक्षियों को, सागर को। मन शांत होता जा रहा है। मन शांत होता जा रहा है। मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। सूरज की किरणें रह जाएंगी। वृक्षों की डोलती छाया रह जाएगी। हवाएं रह जाएंगी, सागर का गर्जन रह जाएगा। लेकिन आप, आप बिल्कुल मिट जाएंगे।
सुनते रहें, सुनते ही सुनते भीतर कुछ पिघल जाएगा, मिट जाएगा। सब शांत
हो जाएगा।
शांत सुनते रहें मन शांत होता जा रहा है। मन शांत होता जा रहा है। मन शांत होता जा रहा है। मन शांत होता जा रहा है। हवाएं रह गईं, आप, आप नहीं रहे। मिट गए, बह गए। खो गई बूंद सागर में। मन शांत हो गया है। सुनते रहें, सुनते रहें, सुनते रहें।...
छोड़ दें अपने को, बिल्कुल छोड़ दें। मन शांत हो गया है।... मन शांत हो गया है... मन बिल्कुल शांत हो गया है।...
हवाएं रह गई हैं... सूरज की किरणें रह गई हैं... सागर का गर्जन रह गया है... आप मिट गए हैं... छोड़ दें अपने को, मिट जाएं।
मन बिल्कुल शांत हो गया है... मन शांत हो गया है... मन शांत हो गया है...
मन बिल्कुल शांत हो गया है।...
अब धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। फिर बहुत आहिस्ता से आंख खोल लें। जैसी शांति भीतर है, वैसी ही बाहर भी है। धीरे-धीरे आंख खोलें। जो भीतर है, वही बाहर भी है।
धीरे-धीरे आंख खोलें, देखें वृक्षों को। देखें सूरज की किरणों को। जो भीतर है, वही बाहर भी है।

सुबह की बैठक समाप्त हुई।

शून्य की नाव
सातवां प्रवचन

परम जीवन को पाने की सीढ़ी
(5 मई 1968 रात्रि)

शिविर के इस अंतिम मिलन में थोड़ी सी बात मुझे और आपसे कहनी है।
तीन दिन पहले हमारी जो अंतर्यात्रा शुरू हुई थी उसका आज अंतिम चरण है। सारे जीवन की ही कथा ऐसी है--जो दो दिन पहले शुरू होता है वह दो दिन बाद समाप्त हो जाता है। हम सोच भी नहीं पाते हैं कि अंत करीब आ जाता है। जीवन में सब कुछ ऐसे ही समाप्त हो जाता है। विदा की कोई तैयारी तो नहीं होती, लेकिन विदाई लेनी पड़ती है। जैसे असमय में लगता है कि अलग हो गए, ऐसा ही जीवन के अंतिम चरण में भी लगता है कि अलग होना पड़ रहा है। लेकिन उसकी तैयारी हो सकती है। एक-एक पल ऐसे जीए जा सकता है इस भांति कि जैसे हम विदा के लिए हमेशा तैयार हों। और जो व्यक्ति प्रत्येक पल को ऐसे जीता है कि दूसरे पल अंत संभव है वही व्यक्ति जीवन के परिपूर्ण आनंद को, जीवन के अमृत को उपलब्ध हो पाता है।
एक यात्रा में मैं था, वर्षा के दिन थे, और बीच में एक नाला पूर पर आ गया था। सेतु डूब गया था। और गाड़ी रोक कर कोई दो घंटे वहां रुक जाना पड़ा। पानी उतरेगा तब नदी पार की जा सकेगी। और भी दो गाड़ियां मेरे पीछे आईं और रुक गईं। उन गाड़ियों में जो व्यक्ति थे, मैं उनसे अपरिचित था, लेकिन उन्होंने संभवतः मेरी बातों के संबंध में कुछ सुना होगा। नदी के किनारे पत्थर पर बैठा हुआ देख कर एक गाड़ी के तीन व्यक्ति मेरे पास आकर बैठ गए और कुछ बात करने लगे। दो घंटे वहां बैठना था, मैं उनसे कुछ बात करता रहा। फिर नदी का पानी उतर गया। वे अपनी गाड़ी उतारने को हुए, तो उन्होंने मुझसे कहा: आपकी बातें बहुत अच्छी लगीं, अब जब हम लौट कर आएंगे तब जरूर आपसे मिलेंगे और आपकी बातों पर कुछ प्रयोग करने का प्रयास करेंगे। मैंने उनसे कहा: लौट कर आने का कोई भी भरोसा नहीं है; हो सकता है आप लौट आएं लेकिन मैं न बचूं; हो सकता है मैं बचूं आप न लौटें; हो सकता है हम दोनों बचें और मिल न सकें। सभी कुछ हो सकता है। और एक छोटी सी कहानी मैंने उनसे कही। फिर हंसते हुए हम विदा हो गए।
एक छोटी सी कहानी मैंने उनसे कही, पता नहीं था कि वह कहानी क्या परिणाम ले आएगी। मैंने उन्हें कहा कि एक सम्राट था चीन में, अपने वजीर को उसने फांसी की सजा दे दी थी। कुछ शक हुआ, कुछ संदेह हुआ और वजीर को बंद कर दिया कारागृह में। कल सुबह उसे फांसी लग जाएगी। नियम था उस राज्य का कि फांसी के पहले सम्राट स्वयं कैदी से मिलता था, उसकी कोई अंतिम इच्छा हो तो पूरी कर दे। फिर यह तो वजीर था, सम्राट का बड़ा वजीर था।
तो उसे कल सुबह फांसी होनी है, आज संध्या अपने घोड़े पर सवार होकर कारागृह के पास पहुंचा। घोड़े को बाहर बांधा, फिर भीतर गया। सींकचों के भीतर, द्वार के पास ही उसका बड़ा वजीर कैद था। सम्राट को उसने देखा और वजीर की आंखों से आंसू बहने लगे। सम्राट हैरान हुआ! वजीर एक बहादुर आदमी था। जीवन के बहुत कष्ट, जीवन में मृत्यु का बहुत बार मुकाबला किया था। आशा न थी कि वह रोने लगेगा मृत्यु के कारण। सम्राट उसे समझाने लगा कि तुम रोते हो? तुम भयभीत हो? वह वजीर कहने लगा: मृत्यु से नहीं, किसी और बात से रोता हूं। सम्राट ने कहा: और क्या बात है? कहो, मैं पूरी करूं। इसीलिए आया हूं
कि तुम्हारी कोई अंतिम इच्छा हो तो पूरी करूं।
उसने कहा: नहीं, आप न कर सकेंगे, बहुत कठिन हो गई यह बात। रोता हूं इसलिए--छोड़ दें, लेकिन जाने दें, वह आपसे नहीं हो सकेगा। सम्राट ने कहा: फिर भी तुम कहो। उस वजीर ने कहा: इसलिए नहीं रो रहा हूं कि कल मर जाऊंगा। मरने का तो कोई सवाल नहीं है। जिंदगी तो हमेशा दांव पर है किसी भी क्षण मरा जा सकता है। रो रहा हूं आपके घोड़े को देख कर, वह द्वार पर घोड़ा बंधा है। सम्राट ने कहा: घोड़े को देख कर! घोड़े से क्या संबंध? वह वजीर कहने लगा: मैंने एक कला सीखी थी घोड़े को आकाश में उड़ना सिखाने की। लेकिन जिस जाति के

घोड़े को आकाश में उड़ना सिखाया जा सकता है, वह जीवन भर मुझे नहीं मिल सका। और आज जब कि कल मेरी मौत आने को है, वह घोड़ा द्वार पर खड़ा है। जिस घोड़े पर आप बैठ कर आए हैं इसी जाति के घोड़े की मैं खोज में था। इसलिए रो रहा हूं कि जीवन में एक कला सीखी थी, उसका उपयोग न कर पाया और मौत करीब आ गई।
सम्राट का लोभ आकाश छू गया। घोड़ा आकाश में उड़ सकता है! तब तो दुनिया में उस जैसा कोई सम्राट न रह जाएगा अगर उसका घोड़ा आकाश में उड़े! उसने कहा: वजीर, जंजीरें खोल दी जाएं वजीर की। और वजीर से कहा: कितने दिन में यह बात हो सकती है? धोखा मत देना। वजीर ने कहा: कम से कम एक वर्ष लग जाएगा। सम्राट ने कहा: कोई फिकर नहीं, अगर एक वर्ष में घोड़ा उड़ना सीख गया, तो तुम अपनी जगह वापस ले लिए जाओगे, न केवल ले लिए जाओगे बल्कि आधा राज्य तुम्हें दे दूंगा पुरस्कार में। और अगर नहीं यह हो सका, तो ठीक है साल भर बाद फांसी दी जा सकेगी।
वजीर घोड़े पर सवार होकर अपने घर पहुंच गया। सांझ तो उसके घर में दीये
भी नहीं जलाए गए थे, कल सुबह उसकी मौत होने को थी। उसकी पत्नी, उसके बच्चे, उसके प्रियजन रोते थे। उसे सामने देख कर उन्हें विश्वास न आया, उसकी पत्नी उससे पूछने लगी, कैसे वापस आ गए हो? उसने सारी बात बताई। उसकी पत्नी छाती पीट कर रोने लगी, कि तुम कैसे पागल हो, तुमने तो कभी कोई कला नहीं सीखी घोड़े को आकाश में उड़ाने की। यह तुम क्यों झूठी बात बोल आए हो? और अगर झूठ ही बोला था तो एक साल के लिए बोला; तो कोई दस-बीस साल के लिए बोलना था। एक वर्ष तो ऐसे बीत जाएगा, तुम्हारी मृत्यु से भी ज्यादा कठिन हो जाएगा यह वर्ष बिताना, एक-एक पल बीतेगा और लगेगा मौत आती, मौत आती।
वह वजीर हंसने लगा, उसने कहा, पागल, तू जानती नहीं, एक वर्ष बहुत बड़ा है, एक पल भी बहुत बड़ा है। कौन जाने वर्ष भर में मैं मर जाऊं, राजा मर जाए, घोड़ा मर जाए, कुछ भी हो सकता है। एक वर्ष बहुत बड़ा है। और ऐसा हुआ--वजीर ही नहीं मरा, राजा ही नहीं मरा, घोड़ा ही नहीं मरा, उस वर्ष में तीनों मर गए। उस वर्ष तीनों मर गए। वर्ष इतना बड़ा साबित हुआ। एक पल इतना बड़ा साबित हो सकता है।
तो मैं उन मित्र को विदा करने लगा उनकी गाड़ी पर और उनसे मैंने यह कहानी कही, वे हंसने लगे, मैं भी हंसने लगा, हम विदा हो गए।
वे गाड़ी निकाल गए। बड़ी गाड़ी थी। फिर थोड़े कोई दस मिनट बाद मैं भी अपनी गाड़ी निकाल कर पीछे पार किया नदी। कोई दो मील बाद ही जिन्हें मैंने जिंदा छोड़ा था, वे मुझे मृत मिले। उनकी गाड़ी तो टकरा गई थी और वे तीनों वहीं स्थान पर ही मर गए थे। मेरा ड्राइवर कहने लगा: चलते वक्त आपने कहानी कही थी--तीन के मर जाने की। ये तीन तो... ये तो मर गए! और ये तो इस ख्याल में थे कि लौट कर आएंगे, आपकी बातें ठीक लगी थीं, फिर कुछ प्रयोग करेंगे।
जिंदगी ऐसी ही है--दुबारा लौट कर हम मिलेंगे, नहीं मिलेंगे, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। राजा मर सकता है, वजीर मर सकता है, घोड़ा मर सकता है। तीनों भी मर सकते हैं। जिंदगी इतनी ही बेबूझ है।
इसलिए अंतिम विदा के क्षण में आपसे यह कहना चाहता हूं: एक-एक पल को इस भांति जीना कि दूसरे पल का कोई भी भरोसा नहीं है। यह बोध ही मनुष्य को साधक बनाता है। यह बोध ही कि एक-एक पल अंतिम हो सकता है। जैसे घास की पत्ती पर पड़ी हुई सुबह ओस की बूंद कंपती है, जरा सा हवा का झोंका और बूंद नीचे गिर जाएगी और बिखर जाएगी। वैसे ही मनुष्य का जीवन प्रतिपल किसी ओस की बूंद की तरह घास की पत्ती पर कंपता हुआ है। किसी भी क्षण बूंद गिर जाएगी और सब समाप्त हो जाएगा। यह जो क्षण भर के लिए जीवन है, यह जो क्षण भर के लिए श्वास है, यह जो क्षण भर के लिए चिंतन और मनन है, और अवसर है, क्या इस अवसर से हम उस जीवन को पाने की दिशा में कोई कदम रख सकते हैं जहां कोई मृत्यु नहीं--जहां अमृत है, जहां परम जीवन है। एक ही बात स्मरण रखने की है कि जिसे हम जीवन समझते हैं वह जीवन नहीं एक क्षण भर का अवसर है। उस अवसर को हम परम जीवन को पाने की सीढ़ी बना सकते हैं चाहें तो, अन्यथा खो भी सकते हैं।
साधक का यही अर्थ है कि उसने इस जीवन को चरम नहीं मान लिया, अंतिम नहीं मान लिया, इसे एक अवसर, एक ऑपरच्युनिटी, एक मौका बनाया है ताकि वह और गहरे जीवन को, और परम जीवन को, और अमृत जीवन को पाने की दिशा में कदम रख सके।

एक-एक पल को इस भांति समझना कि बूंद किसी भी क्षण गिर सकती है। तो फिर एक-एक पल साधना हो जाएगी, एक-एक श्वास साधना बन जाए, एक-एक दिन, एक-एक रात जीवन को क्रांति में ले जाने का मार्ग बन सकता है।
यह पहली बातः जीवन की क्षणभंगुरता का स्मरण; ताकि जीवन को गंवाया न जा सके, खोया न जा सके, जीवन एक उपलब्धि बन सके।
दूसरी बातः इन तीन दिनों में साधना की जिस दिशा की और कुछ इशारे मैंने किए हैं, और आपने कुछ इशारे पकड़े हैं, पकड़ें होंगे। आपने कुछ कदम चले हैं, चले होंगे, तो इन कदमों को वहीं मत रोक देना, उन कदमों को आगे भी एक सातत्य, एक कंटीन्युटी उपलब्ध होनी चाहिए, मिलनी चाहिए, तो ही किसी दिन द्वार खुल सकता है।
लेकिन हम उस किसान की तरह हैं, सुना होगा आपने, एक किसान, बड़ा खेत था उसके पास, उसने कुआं खोदना चाहा, ताकि पानी मिल सके, फसलें हो सकें। उसने एक कुआं खोदना शुरू किया। लेकिन चार-छह हाथ खोदा होगा, पानी तो निकला नहीं, तो उसने सोचा कि यहां पानी नहीं निकलेगा। उसने वह गड्ढा वैसे ही छोड़ दिया, फिर दस-पांच दिन विश्राम किया और दूसरी जगह गड्ढा खोदा, फिर दस-पांच हाथ खोदा, फिर वहां भी पानी नहीं निकला, उसने सोचा कि यहां भी पानी नहीं निकलेगा, फिर कुछ दिन विश्राम किया, फिर गड्ढा खोदा। धीरे-धीरे पूरा खेत गड्ढों से भर गया, लेकिन पानी कहीं भी नहीं निकला। तब वह रोने लगा बैठ कर अपने खेत के किनारे पर। वहां से एक फकीर गुजरता था। उसने पूछा: क्यों रोते हो? उसने कहा: मैं थक गया, परेशान हो गया कुएं खोद-खोद कर। साल बरबाद हो गई। सारा खेत खोद डाला है लेकिन पानी नहीं निकलता। वह फकीर गया और हंसने लगा, उसने कहा, पागल, काश, तूने इतने गड्ढे किए, एक ही जगह खोदता तो पानी कभी का निकल आता। लेकिन चार-छह हाथ खोदा और छोड़ दिया, चार-छह हाथ खोदा और छोड़ दिया, ऐसे तो कुएं नहीं खुदते हैं।
ध्यान स्वयं के भीतर कुआं खोदने जैसा है। स्वयं के भीतर जो छिपा है जलस्रोत, वह जो स्वयं के भीतर छिपी है ज्योति, वह जो स्वयं के भीतर छिपा है जीवन, वह जो स्वयं के भीतर छिपा है परमात्मा, उस तक यह कुआं खोदने का नाम ध्यान है। ध्यान कुआं खोदना ही है स्वयं के भीतर। लेकिन कभी हम थोड़ा सा खोद लेते हैं। वह किसान तो बहुत समझदार था, चार-छह हाथ खोदता था, हम तो स्कीनडीप भी नहीं खोदते हैं। चमड़ी की मोटाई के बराबर भी नहीं खोदते हैं, फिर छोड़ देते हैं। फिर साल, दो साल में ख्याल आता है, फिर थोड़ा खोदते हैं, फिर छोड़ देते हैं। ऐसे जीवन बीत जाएगा और प्राणों के खेत में परमात्मा का कुआं नहीं खोदा जा सकेगा। खोदना है वह कुआं तो सातत्य चाहिए, श्रम चाहिए, लगातार एक ही जगह चित्त को खोदते ही चले जाना है, खोदते ही चले जाना है, तो जरूर व्यक्ति स्वयं के भीतर उसे पाने में सफल हो जाता है जो मौजूद है, जो उसकी संपदा है, जो उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। लेकिन अधिकतम लोग इसी तरह करते हैं, शिविर में आएंगे आप फिर चले जाएंगे, दिन, दो दिन शायद ध्यान के लिए बैठें, फिर भूल जाएंगे।
दिन, दो दिन से नहीं कुछ होने का है। जीवन भर की गलत आदतें हैं, जीवन भर
का गलत जीवन का ढंग है, विचार के गलत उलझाव हैं। दिन, दो दिन से नहीं होगा। हाथ, दो हाथ खोदने से नहीं होगा। गहरा है पानी; क्योंकि हमने ही बहुत मिट्टी की पर्तें इकट्ठी कर रखी हैं, हमने ही बहुत चट्टानें इकट्ठी कर रखी हैं, सबमें दब गया है नीचे। मिट्टी खोदनी पड़े, चट्टान काटनी पड़े, खोदते ही चला जाना पड़े, तो शायद... शायद क्यों तब तो निश्चित ही भीतर के जलस्रोत पाए जा सकते हैं। जिन्हें पाए बिना हर आदमी प्यासा जीता है और प्यासा मरता है। और जिन्हें पा लेने पर वह तृप्ति मिल जाती है जिसका कोई अंत नहीं।
तो दूसरी बात यह कहनी है कि यहां से चले जाते हैं--तो जो यहां थोड़े से प्रयास किए हैं वे छूट न जाएं, वे साथ चले जाएं, उन्हें साथ लेते चले जाएं। उन पर धीरे-धीरे रोज थोड़ा-थोड़ा श्रम, धीरे-धीरे थोड़ी-थोड़ी खुदाई, धीरे- धीरे कुएं की तरफ कुछ न कुछ उपाय जारी रखें, जारी रखें। जिन्होंने ने भी कभी खोदा है वे कभी असफल नहीं हुए। दूर हो सकता है पानी, थोड़ी-बहुत मिट्टी की चट्टानें हो सकती हैं, पत्थर हो सकते हैं, लेकिन पानी जरूर भीतर है। थोड़े फासले हो सकते हैं लेकिन पानी जरूर भीतर है। और अक्सर तो यह होता है

कि आदमी खोदते-खोदते करीब-करीब वहां से लौट आता है जहां से जलस्रोत बहुत ही करीब थे, बहुत ही निकट थे।
कोलरेडो में सबसे पहले जब सोने की खदानें खोज ली गई थीं, तो कोलरेडो में तो सारे दुनिया के लोभी भागने लगे, पहुंचने लगे। वहां तो सोना जैसे कंकड़-पत्थरों की तरह कोलरेडो की पहाड़ियों में बिखरा हुआ था। किसी के पास थोड़ी सी जमीन थी तो वह करोड़पति हो गया। एक आदमी ने सोचा कि छोटी-मोटी जमीन क्या खरीदनी, उसने पूरा एक पहाड़ ही खरीद लिया। लाखों रुपयों के उपकरण लगाए पहाड़ पर और खुदाई शुरू की सोने की खदानों के लिए। लेकिन खोदता गया, खोदता गया, सोने का कोई पता नहीं, पत्थर ही पत्थर हाथ आए। लाखों रुपये खर्च कर दिए थे। यंत्र लगाए थे बड़े। छोटे-मोटे लोग छोटा-मोटा टुकड़ा लेकर खोद कर खोज-बीन करके धनी हो गए थे। और वह धनी अपना सब धन लगा कर निर्धन हो गया था। वहां कोई सोने का पता न था। फिर उसने विज्ञापन किया, अपनी पहाड़ी बेच देने के लिए, मय उपकरणों के, मशीनों के, सारी व्यवस्था के अपनी पूरी पहाड़ी बेच देने का उसने विज्ञापन किया। कई पचास लाख से ऊपर जो उसने सूचना की। उसके घर के लोग कहने लगे, तुम सोचते हो: कोई पागल होगा जो खरीदेगा? सबको पता चल गया है कि तुम बरबाद हो गए हो। और वहां से रत्ती भर सोना नहीं निकला है तो कौन खरीदेगा पचास लाख देकर?
उस आदमी ने कहा: मैं निराश नहीं हूं, कोई न कोई, कोई न कोई मिल भी सकता है। और एक आदमी मिल गया। उसके घर के लोगों न कहा: तुम पागल हुए हो, एक आदमी बरबाद हो गया है और तुम बरबादी के धंधे में पड़ना चाहते हो। वहां कुछ भी मिलने को नहीं है। लेकिन उस आदमी ने कहा: कोई ठिकाना नहीं, जहां तक उसने खोदा है वहां तक सोना न हो और आगे सोना हो क्योंकि आगे बहुत जमीन बाकी है। नहीं माना, खरीद लिया। और चमत्कार तो तब हुआ जब उसने खुदाई शुरू की और पहले दिन ही सोने की खदान उपलब्ध हो गई। सिर्फ एक फीट नीचे सोने की खदान शुरू हो गई। सिर्फ एक फीट पहले से पहला मालिक छोड़ कर चला गया।
अक्सर जिंदगी में ऐसा हो जाता है कि जहां से आप छोड़ कर चले आते हैं वहां से शायद थोड़े ही कदम उठाने की और जरूरत थी और मंजिल पूरी हो जाती। इसलिए यह ध्यान रखना कि छोड़ कर लौट मत आना। जाते हो तो जाना अंत तक--साहस से, आशा से, प्रतीक्षा से, श्रम से, संकल्प से। पीछा करना अपने भीतर आखिर तक। जहां तक जाना संभव हो वहां तक जाना। तब ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई भीतर गया हो और असफल लौटा हो। जो जाते ही नहीं बाहर से ही लौट आते हैं वे ही केवल असफल होते हैं।
परमात्मा की दिशा में असफलता होती ही नहीं। लेकिन कोई जाए ही नहीं, चले ही नहीं, तो परमात्मा भी कुछ भी नहीं कर सकता है। हम दो कदम चलें, तो परमात्मा चार कदम चलने को हमेशा तैयार है। हम एक हाथ बढ़ाएं, तो परमात्मा हमेशा दो हाथ बढ़ाने को तैयार है। लेकिन हम पीठ किए खड़े रहें, तब तो कोई उपाय नहीं है। पीठ किए ही खड़े रहें तो भी शायद कुछ हो जाए, लेकिन हम पीठ किए भाग भी रहे हैं, तब तो फिर और भी उपाय नहीं है।
दूसरी बात-श्रम साधना का, ध्यान का सतत, प्रतिपल उस दिशा में प्राण बहते ही रहें, प्रतिदिन उस दिशा में प्रार्थना चलती ही रहे। घड़ी दो घड़ी को एकांत में अकेले होकर ध्यान में डूबते ही रहें।
तीसरी बातः किसी को पता नहीं है कि किस क्षण द्वार खुल जाएंगे। किसी
को पता नहीं है। एक करोड़पति से एक दरिद्र भिखारी ने पूछा कि आप करोड़पति कैसे हो गए? उसने कहा कि मैं हमेशा अवसर की प्रतीक्षा करता रहा, और जब भी मुझे अवसर मिला, तो मैंने श्रम किया और मैं करोड़पति हो गया। तो उस भिखारी ने कहा: अवसर भी... जब भी अवसर मिला तब आपने श्रम किया, लेकिन अवसर कब आएगा, मैं भी श्रम करना चाहता हूं। उस करोड़पति ने कहा: जब भी अवसर आया मैं झपट कर अवसर पर सवार हो गया, जब अवसर आए तुम भी झपट कर सवार हो जाना। लेकिन उसने कहा: वह तो ठीक है, लेकिन अवसर कब आएगा? मुझे कैसे पता चलेगा? और जब तक मैं झपटूं तब तक निकल जाए तो क्या होगा। तो उस करोड़पति ने कहा: यू कीप ऑन जंपिंग। तुम तो कूदते ही रहो, कूदते ही रहो, कूदते ही रहो। जब अवसर आए, तुम कूदते हुए तैयार रहोगे, तो तुम झपट कर उसके ऊपर सवार कर लेना। अगर तुम बैठ गए और प्रतीक्षा करने लगे कि जब अवसर आएगा तब मैं कूद कर सवार हो जाऊंगा, तो अवसर इतने जल्दी निकल जाता है कि तुम कूद भी नहीं पाओगे और वह निकल

जाएगा। यू कीप ऑन जंपिंग। तुम तो कूदते ही रहो, कूदते ही रहो। जब भी आए तुम कूदते हुए ही मिलने चाहिए उसको, ताकि तुम तत्क्षण सवार हो जाओ।
तब वह मिलन की घड़ी किस क्षण आएगी कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। कोई नियम नहीं जिनसे ज्ञात हो सके कि किस क्षण वह द्वार खुल जाएगा।
इसलिए तीसरी बात यह है कि प्रतिपल तैयारी की जरूरत है कि कभी भी वह द्वार खुल जाए तो मैं सोया हुआ न मिलूं, कीप ऑन जंपिंग, कि कहीं ऐसा न हो कि वह आए द्वार पर और मैं सोया रहूं। कि वह आए और मैं पीठ किए रहूं। रवींद्रनाथ एक गीत गाते थे, वह उन्हें बहुत प्रीतिकर था। वे कहते थे,
एक बड़ा मंदिर था एक गांव के बाहर। उस मंदिर में सौ पुजारी थे। उस मंदिर में स्वर्ण की प्रतिमाएं थीं। उस मंदिर में धन बरसता था। दूर-दूर से लोग उस मंदिर को प्रेम करने वाले आते थे। वह बड़ा तीर्थ था। एक रात बड़े पुजारी ने स्वप्न देखा कि भगवान ने कहा है कि कल मैं आ रहा हूं। कल मैं तुम्हारे मंदिर में आ रहा हूं। पुजारी ने सुबह डरते-डरते दूसरे पुजारियों को कहा कि रात मैंने एक स्वप्न देखा है। भगवान ने कहा है कि कल मैं आता हूं तैयार रहना। पहले तो सपना था, पुजारी को खुद भी भरोसा नहीं था। लेकिन फिर भी कौन जाने, सपना सच हो। और भगवान आ जाए और उसकी तैयारी न हो। तो सारे मंदिर को स्वच्छ किया गया, साफ किया गया। धूप, सुगंध, दीये। सारा मंदिर सजा। दिन बीत गया लेकिन भगवान की कोई खबर नहीं। सांझ आ गई, सूरज डूबने लगा, लेकिन उसके रथ के पहियों की कोई आवाज नहीं है। फिर पुजारी थक गए और पुजारी कहने लगे: सपना ही था, कहां के पागलपन में पड़ गए हो, सपने भी कहीं सच होते हैं। और साधारण सपना नहीं, भगवान के आने का सपना भी कहीं सच हो सकता है।
फिर रात हो गई, द्वार बंद करके सो गए, दीये बुझ गए। सुगंधियां बुझ गईं। धूप बुझ गई। रात के कोई बारह बजे होंगे, तब एक स्वर्ण-रथ आकर मंदिर के द्वार पर रुका। अंधेरी अमावस की रात, कोई उतरा उस रथ से, सीढ़ियां चढ़ा, जाकर द्वार भड़भड़ाए, भीतर एक पुजारी की नींद खुली होगी द्वार भड़भड़ाने से, उसने कहा, मालूम होता है जिस राजा की हम प्रतीक्षा करते थे वह आ गया, मालूम होता है प्रियतम द्वार पर खड़ा है।
लेकिन दूसरे पुजारियों ने कहा: नींद, गड़बड़ मत करो, चुपचाप सो जाओ, हवा
के झोंके हैं, कोई नहीं है। हवा के झोंके किवाड़ों को भड़भड़ाते हैं, कोई भी नहीं है, सो जाओ। फिर वह जो अतिथि आया था, उतरा, वापस रथ में बैठ कर चलने लगा, रथ के चक्कों की गड़गड़ाहट हुई, फिर किसी पुजारी को सुनाई पड़ा कि कोई रथ की आवाज मालूम होती है, उसने कहा, कोई रथ आता-जाता मालूम पड़ता है। दूसरे पुजारियों ने कहा: गड़बड़ मत करो, नींद में बड़बड़ाओ मत, कोई नहीं बादलों की गड़गड़ाहट है, कहीं कोई रथ नहीं।
फिर सुबह उनकी नींद खुली, फिर उन्होंने द्वार खोले, फिर वे सब पुजारी द्वार पर बैठ कर रोने लगे। रथ के पहियों के चिह्न सीढ़ियों तक बने थे। सीढ़ियों पर किसी के चरण-चिह्न बने थे। कोई द्वार तक चढ़ा था। कोई रथ द्वार तक आया था। किसी ने दरवाजे जरूर खटखटाए थे। भूल हो गई। जिसे हवा का झोंका समझा था, जिसे बादलों की गड़गड़ाहट समझी थी, वह प्रभु के आगमन की खबर थी, लेकिन तब वे सोए थे। तब वे रोते रहे। गांव भर इकट्ठा हो गया और पूछने लगा क्यों रोते हो? उन्होंने कहा: हम रोते हैं क्योंकि जिसकी जीवन भर प्रतीक्षा की, जब वह आया तो हमारे द्वार बंद थे और हम सोए थे।
कोई नहीं जानता कब उसका रथ आपके द्वार पर भी आकर ठहरे। कोई नहीं जानता
कब वह आपके द्वार को खटखटाए। लेकिन अगर आप जागे हुए सचेत होश में नहीं हैं तो रथ वापस लौट जाएगा। अतिथि वापस लौट जाएगा। और अगर मुझसे पूछते हो तो मैं कहूंगा: रोज ही उसका रथ आता है। लेकिन कभी हम कहते हैं कि बादलों की गड़गड़ाहट है; कभी हम कहते हैं, सागर का गर्जन है; कभी हम कहते हैं, हवाओं की तड़फड़ाहट है; कभी हम कुछ, कभी हम कुछ कह कर रुक जाते हैं। रोज उसका रथ आता है। रोज उसके चरण हमारे मंदिर की सीढ़ी चढ़ते हैं। रोज उसके हाथ हमारे द्वार को खटखटाते हैं। लेकिन हम कुछ कह कर समझा देते हैं अपने को और सो जाते हैं। कोई नहीं जानता किस पल! ... इसलिए प्रत्येक पल को एक जागरण का, होश का, ध्यान का पल बनाना है। प्रत्येक पल को शांति का, मौन का, साइलेंस का एक पल बनाना है, तो शायद हम जागे हुए मिलें जब उसका रथ आए। और मैं आपसे यह भी कह

देना चाहता हूं कि जिस क्षण आप जागे हुए तैयार हैं, उसका रथ उसी क्षण आ जाता है। जागरण के साथ ही वह आ जाता है। जागरण की किरण के साथ ही उसका आगमन हो जाता है।
अभी उसकी घटनाएं हमें लगती हैं हवाओं की आवाज, बादलों की गड़गड़ाहट। तब उलटा हो जाता है जब हम शांत और जागे हुए होते हैं, मौन और ध्यान में होते हैं तब उलटा हो जाता है। तब बादलों की गड़गड़ाहट उसके रथ के पहियों की आवाज मालूम होने लगती है। तब हवाओं का शोर उसके हाथ की थपकी मालूम होने लगती है। इस तीसरी बात के लिए निरंतर, निरंतर सजग और जागरूक रहने की जरूरत है। चौथी बातः साधना कोई ऐसी बात नहीं है कि आपने आधी घड़ी कर ली और निपट गए, मुक्त हो गए। साधना कोई ऐसी बात नहीं कि मंदिर के कोने में बैठ कर आधी घड़ी में मुक्त हो गए, कि घर के कोने में बैठ कर मुक्त हो गए। साधना सच में तो चौबीस घंटे है। मैंने जो कहा है, शांत बैठने को, मौन बैठने को, बैठें, लेकिन यह भी ध्यान रखें कि दिन के बाकी क्षणों में भी मन शांत रहे, मौन रहे। रास्ते पर चलते हुए मौन रहें। भोजन करते हुए मौन रहें। दुकान पर बैठे हुए मौन रहें। जितने दूर तक, जितनी गहराई तक मन मौन, शांत, प्रेमपूर्ण, विस्मय-विमुग्ध, रस से विभोर रहे, उतनी ही साधना धीरे-धीरे चौबीस घंटे पर फैलती चली जाती है।
साधक वही है जो चौबीस घंटे साधक है। जिंदगी एक अखंड धारा है, उसमें ऐसा नहीं होता है कि आप आधी घड़ी को शांत हो गए और साढ़े तेईस घंटे अशांत रहे। साढ़े तेईस घंटे आप अपवित्र रहें और आधा घंटा पवित्र हो जाएं, ऐसा कैसे हो सकता है? साढ़े तेईस घंटे आप मूढ़ रहें, आधा घंटे आप बुद्धिमान हो जाएं, ऐसा कैसे हो सकता है? साढ़े तेईस घंटे आप मुर्दा रहें, आधा घंटे को जीवंत हो जाएं, ऐसा कैसे हो सकता है? गंगा बहती है हिमालय से और गंगा कहे कि मैं काशी के घाट पर भर पवित्र रहूंगी, उसके पहले भी अपवित्र रहूंगी उसके बाद भी अपवित्र रहूंगी, ऐसा कैसे हो सकता है? अगर काशी के घाट पर गंगा को पवित्र होना है तो गंगोत्री से ही पवित्र चलना होगा। और अगर काशी के घाट पर गंगा पवित्र है तो आगे भी पवित्र ही रहेगी।
जीवन एक अखंड धारा है। उसमें कहीं खंड नहीं, कहीं तोड़ नहीं। चौबीस घंटे हमारी चेतना की गंगा बही जाती है। ऐसा नहीं हो सकता कि आधा घड़ी जब आप ध्यान को बैठें तब पवित्र और मौन हो जाए और साढ़े तेईस घंटे फिर गड़बड़ हो जाए। फिर धोखा होगा। फिर स्मरण रखें कि साढ़े तेईस घंटे जो हो रहा है वही सच होगा, आधे घंटे जो हो रहा है वह झूठ होगा। तब वह आधा घंटा सेल्फ डिसेप्शन हो जाएगा। धोखा हो जाएगा। मेरी बात सुन कर इसलिए ऐसा न सोच लेना कि पंद्रह मिनट बस बैठ गए आंख करके तो काम पूरा हो गया, वह केवल काम की शुरुआत है, पूरा हो जाना नहीं है। पूरा काम तो उस दिन होता है जिस दिन आंख बंद करके बैठने की जरूरत ही न रह जाए। चौबीस घंटे उठते-बैठते, सोते-जागते शांति की अहर्निश धारा भीतर बहने लगे। वह बह सकती है, लेकिन तीन-चार हजार वर्षों से आदमी को ऐसा धर्म सिखाया गया जो खंड का धर्म है। कहा कि मंदिर चले जाओ, बस धार्मिक हो गए। एक पांच मिनट के लिए एक आदमी मंदिर में सिर पटक कर लौट आता है और धार्मिक हो गया। फिर वह अकड़ कर निकलता है कि मैं धार्मिक हो गया। फिर वह दूसरों को ऐसे देखता है कि ये सब पापी नरक जाएंगे। उसका स्वर्ग जाना निश्चित हो गया। वह पांच मिनट मंदिर हो आया या मस्जिद हो आया या गुरुद्वारा हो आया या कहीं और हो आया। जीवन इतना सस्ता नहीं है, धर्म इतना सस्ता नहीं है। परमात्मा भी इतना सस्ता नहीं है।
समग्र जीवन की, आमूल जीवन की जड़ से क्रांति करनी जरूरी है। चौबीस घंटे... जो आप पंद्रह मिनट के लिए साध रहे हैं, धीरे-धीरे उसकी सुगंध चौबीस घंटे पर फैलानी है। कोई कठिन तो नहीं। बहुत सरल है। कभी ख्याल नहीं किया इसलिए कठिन मालूम होता है। दुकान पर बैठने में अशांत होने की कौन सी जरूरत है। अशांत होने से कोई दुकान अच्छी चलती है। अशांत होने से कोई ज्यादा व्यवसाय होता है। अशांत होने से क्या होता है। भोजन अशांत बैठ कर करने का कोई फल है, कोई हित है।
सच तो यह है जिसने शांत होकर भोजन नहीं किया, उसने भोजन के आनंद को कभी जाना नहीं। जो शांत होकर स्नान नहीं किया, उसने स्नान के आनंद को नहीं जाना। जिसने शांत होकर कपड़े नहीं पहने, उसने कभी कपड़े पहनने के आनंद को

नहीं जाना। जिसने शांत होकर कभी सोया नहीं, उसे नींद की अदभुत शांति का, आनंद का कोई अनुभव नहीं। शांत चौबीस घंटे, हर कृत्य में इस बात का बोध रहे कि मैं शांत धारा बना हुआ हूं या नहीं। और सिर्फ बोध रहेगा तो आप पाएंगे कि धारा धीरे-धीरे शांत होती चली जा रही है। लेकिन लोग सोचते हैं कि मरते वक्त आखिर में शांत हो लेंगे। आखिरी में शांत हो लेंगे। अभी क्या करना है। और बेईमानों ने इस तरह की बातें भी फैला रखी हैं कि मरते वक्त एक दफा भगवान का नाम ले लिया तो भी सब हो जाएगा। आदमी इतना चालाक हो सकता है कि भगवान को भी धोखा देना चाहे। कि एक दफा नाम ले लेंगे आखिर में मरते-मरते वक्त। और यहां तक कथाएं गढ़ रखी हैं होशियार लोगों ने कि एक बाप मर रहा था, उसके बेटे का नाम नारायण था, तो उसने मरते वक्त कहा: नारायण! और भगवान समझे कि मुझको बुला रहा है। मर गया और स्वर्ग चला गया। वह अपने लड़के को बुला रहा था। लड़का भी उसके धोखे में न आता, लेकिन भगवान धोखे में आ गए। ये कथाएं हमने अपने को डिसीव करने के लिए, अपने को प्रवंचना देने के लिए गढ़ ली हैं। कि एकाध दफा आखिर में नाम ले लेंगे और निपट जाएंगे।
मैंने सुना है, एक आदमी मर रहा था, मरणशय्या पर पड़ा था। उसके कानों में मंत्र पढ़े जा रहे हैं, उसे गीता सुनाई जा रही है। पंडित-पुजारी इकट्ठे हैं। वह मर रहा है, उसे गीता के पाठ पढ़ाए जा रहे हैं, उसके कानों में मंत्र सुनाए जा रहे हैं, उसको स्वर्ग जाने का इंतजाम किया जा रहा है। सांझ हो गई, डूबने को सूरज हो गया है। घर के सब लोग इकट्ठे हैं, उसने आंख खोली और कहा: मेरा बड़ा बेटा कहां है? उसकी पत्नी पास ही है, उसे तो बहुत आंसू आ गए खुशी के। उसने कभी अपने बेटे को नहीं पूछा आज तक, वह हमेशा पूछता था तिजोड़ी की चाबी कहां है। वह हमेशा पूछता था कि खातेबही कहां रखे हैं। वह हमेशा पूछता था कि यह, वह, धन, पैसा, यश, सब पूछता था। कभी उसने नहीं पूछा मेरा बेटा कहां है। जो पैसे की दौड़ में होता है उसे प्रेम का ख्याल न रह जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। आज इसने पूछा है मरते क्षण में कि मेरा बेटा कहां है? जरूर प्रेम का उदय हुआ है। शायद अंतिम घड़ी में प्रेम का जन्म हो गया है। उसकी पत्नी ने कहा: निश्चिंत रहें, आपके पैर के पास ही बैठा है, मौजूद है। उससे छोटा बेटा कहां है? उस आदमी ने और भी चिंता से पूछा। पत्नी ने कहा: वह भी मौजूद है। और उससे छोटा कहां है? वह आदमी उठने लगा बिस्तर से... तो वह भी मौजूद है। चौथा कहां है? वह भी मौजूद है। उस आदमी की चिंता बढ़ती चली जा रही और पत्नी समझ रही कि वह अपने सब बेटों को प्रेम से याद कर रहा है। फिर वह उठ कर बैठ गया। और उसने कहा: पांचवां बेटा कहां है? उसकी पत्नी ने कहा: आप व्यर्थ चिंता न करें, हम सब यहीं मौजूद हैं। उसने कहा: इसका क्या मतलब फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है?
पत्नी भूल में थी, वह सोचती थी कि स्मरण किया जा रहा है बेटों का। बाप पता लगा रहा था कि दुकान खुली है या बंद है। तो उसको गीता के पाठ सुनाए जा रहे थे बेचारे को, उसको मंत्र सुनाए जा रहे थे। वह जो दुकान पर बैठा हुआ था, वह आदमी वहां था ही नहीं। लेकिन इसमें हंसने की कोई भी बात नहीं। इसमें हंसने जैसी कोई भी बात नहीं। यह बिल्कुल सहज, स्वाभाविक है। जीवन भर वह जहां रहा था, मरते क्षण भी वहीं था। यह तो दो और दो गणित जैसी साफ बात है। जीवन भर जहां होंगे, चेतना अंत क्षण में भी वहीं होगी।
जीवन एक सातत्य है, एक कंटीन्युअस, एक ही धारा है, सतत एक ही धारा है।
इस एक ही धारा को ध्यान में रखें, जीवन की अखंडता को, यह चौथी बात मुझे कहनी है। जीवन अखंड है।
तो अगर शांत होना है, ध्यान में जाना है, प्रेम में प्रविष्ट होना है, प्रभु के मंदिर को खोल लेना है, तो यह चौबीस घंटे का श्वास-श्वास का काम है। यह कोई काम ऐसा नहीं है कि आप पांच मिनट भागे और बैठ गए। उससे कोई संबंध नहीं है। धर्म कोई खंड नहीं है जीवन का, धर्म तो अखंड जीवन है।
तो यह चौथी बात अंत में जाते वक्त आपसे कह देनी है कि जो बात ठीक लगती
हो उसे चौबीस घंटे फैलाते चलें, फैलाते चलें, उसे बढ़ाते चलें। जीवन के सब क्रम में उसको भी होते चलें। हर चीज उसी में डूब जाए। धीरे-धीरे सब उसी में डूब जाए। चौबीस घंटे इकट्ठे हो जाएं, तो क्रांति घटित हो सकती है। तो जिसे में जीवन-क्रांति कहता हूं वह हो सकती है, यह चौथी बात।

और पांचवीं अंतिम बातः पांचवीं बात बहुत स्मरणीय है। पांचवीं बात के
दो हिस्से हैं। पहली बात, परमात्मा की तरफ जो यात्रा है, वह बड़ी धीमी, बहुत आहिस्ता, बहुत धैर्यपूर्वक, बहुत शांत यात्रा है। क्योंकि जब परम शांति को पाना हो तो दौड़ने की अशांति से उसे नहीं पाया जा सकता। जो प्रथम चरण में ही अशांत दौड़ चलेगा वह कभी शांत मंजिल तक नहीं पहुंच सकता। शांति की मंजिल पानी हो तो पहले कदम से ही शांत और धैर्यपूर्ण यात्रा होनी चाहिए। संसार पाना हो तो अधैर्यपूर्ण दौड़ चाहिए, पागलपन चाहिए, फीवर चाहिए, बुखार चाहिए। किसी को धन पाना हो, किसी को दुनिया जीतनी हो, हिटलर बनना हो, नेपोलियन बनना हो, चंगीज खान बनना हो, तो शांति से यह काम नहीं हो सकता। यह काम तो अशांत दौड़ से ही हो सकता है। टेंस और बिल्कुल फीवरिस स्पीड से हो सकता है। पागल की तरह दौड़ने से हो सकता है। ठीक इससे उलटी दुनिया--अगर प्रेम पाना हो, आनंद पाना हो, प्रभु पाना हो, तो बहुत ही शांत, जैसे कोई नदी बही जाती है जिसमें लहर भी नहीं उठती, कहीं कोई शोरगुल भी नहीं होता, चुपचाप बही जा रही है, चुपचाप बही जा रही है।
दो भिक्षु एक नदी पार हो रहे थे। नाव पर बैठ कर उन्होंने नाविक से कहा
कि जल्दी और जल्दी उस पार पहुंचा दो। नाविक ने कहा: क्षमा करें, धार तेज है, हवाएं तेज हैं, आहिस्ता ही चल कर आपको ले चलूं, नाव छोटी है, पुरानी है, मैं बूढ़ा आदमी हूं। आहिस्ता ले चलूं तो पहुंचा भी सकता हूं। जल्दी की तो पहुंचने की उम्मीद कम है। बिल्कुल न पहुंचने की उम्मीद ज्यादा है। मजबूरी थी, लेकिन वे दोनों भिक्षु बेचैन थे, जल्दी में थे। फिर बार-बार कहने लगे, जल्दी करो, जल्दी करो। लेकिन वह बूढ़ा धीरे-धीरे नदी के उस पार ले गया। उनकी जल्दी स्वाभाविक थी, उन्हें पास के गांव पहुंचना था, सूरज डूबने को हो रहा था। उस गांव का नियम था कि सूरज डूबने के बाद द्वार बंद हो जाते थे। फिर रात भर जंगल में अंधेरे में बितानी पड़ती। इसलिए बेचारे जल्दी में थे। उनकी जल्दी बिल्कुल स्वाभाविक थी, जैसी हम सब लोगों की जल्दी बिल्कुल स्वाभाविक है। जहां-जहां दौड़ रहे वहीं-वहीं डर है कि कहीं पहुंचने के पहले दरवाजे बंद न हो जाएं। यह भी डर है कि मैं पहुंचूं कहीं पड़ोसी पहले प्रविष्ट न हो जाए। और सब डर हैं। बहुत तरह के डर हैं। वे भी भयभीत थे। फिर नाव से उतर कर उन्होंने अपना सामान, बोरिया-बिस्तर उठाया। बूढ़ा भिक्षु है, उसके साथ एक जवान भिक्षु है। बड़ी किताबें, ग्रंथ लिए हैं, सामान लिए हैं, वह उठाया, चलने को हुए, तब उन्होंने, बूढ़ा जो कि नाव बांध रहा था, उससे पूछा कि क्यों, हम सूरज डूबने के पहले गांव तक पहुंच जाएंगे न? उस बूढ़े ने नाव बांधते हुए धीरे-धीरे कहा: हां, पहुंच सकते हैं अगर धीरे-धीरे गए तो! क्योंकि मैंने देख लिया आपकी जल्दी! अगर मैं न होता तो आप इस पार भी नहीं पहुंच सकते थे। फिर भी मैं आपसे कहता हूं पहुंच सकते हैं सूरज डूबने के पहले अगर धीरे-धीरे गए तो। अगर जल्दी की तो मैं विश्वास नहीं दिला सकता हूं।
उन्होंने समझा कि यह बूढ़ा पागल है। यह नाविक पागल है। इसकी बात सुनने में समय गंवाना ठीक नहीं। क्योंकि ऐसी बातें अव्यावहारिक और नासमझ लोग कहते हैं, कि धीरे-धीरे जाओगे तो पहुंच जाओगे। समझदार तो हमेशा यही कहते हैं कि जितने जल्दी जाओगे उतने ही जल्दी पहुंचने की उम्मीद है। सभी समझदारों की... प्रेक्टिकल जिनको हम कहते हैं, व्यावहारिक जिनको कहते हैं, उनका गणित यही है कि पहुंचना है तो जल्दी, जल्दी, जल्दी। लेकिन दुनिया में कुछ अव्यावहारिक लोग हैं, वे यह कहते हैं कि पहुंचना है तो धीरे, धीरे, धीरे।
वे भागे दोनों। वह बूढ़ा नाविक नाव बांधता रहा और हंसता रहा। वे दोनों भागे। सूरज नीचे उतरने लगा, जंगल अंधेरा होने लगा, गांव दूर है और वे भागे चले जा रहे हैं। उबड़खाबड़ पहाड़ी रास्ता है। फिर वह बूढ़ा भिक्षु गिर पड़ा। फिर उसके दोनों घुटने टूट गए हैं, और खून बहा जा रहा है। और किताबें बिखर गई हैं और पन्ने उड़ गए। जैसा कि सभी लोगों के साथ होता है, पहुंचने के पहले गिर पड़ता आदमी, टांगें टूट जाती हैं, खून बह जाता, पन्ने बिखर जाते हैं। फिर वह नाविक गीत गाता हुआ पतवार कंधे पर रखे हुए आ गया है पीछे से। और कहने लगा, मैंने कहा था, अगर धीरे गए तो पहुंच भी सकते हो, अगर जल्दी गए तो

कोई कभी नहीं पहुंचता है। लेकिन तब बहुत देर हो गई थी। अब वह वाइ.ज एडवाइज, और वह कीमती सलाह का कोई मतलब न था।
उस रात नाविक तो प्रविष्ट हो गया गांव में। वह बूढ़ा भिक्षु और उसका युवा साथी गांव के बाहर अंधेरी रात में ही रह गए। क्योंकि उस लंगड़े बूढ़े को अब ढोकर ले जाना पड़ा।
मैं भी आपसे यह पांचवीं सलाह में यह कहना चाहता हूं: बहुत शांति से, बहुत शांति से, बहुत शांति से प्रभु की ओर धीरे-धीरे एक-एक कदम रखना है। शांति से लेकिन सजग, शांति से लेकिन दृढ़, शांति से लेकिन सतत, यह पांचवें सूत्र का पहला हिस्सा है। दूसरा हिस्सा और अंतिम बात, शांति से कदम जो रखता है वह तभी रख सकता है जब उसकी प्रतीक्षा अनंत हो। जब वह अनंत तक प्रतीक्षा करने को राजी हो। जब प्रतीक्षा के लिए उसे जल्दी न हो, वह यह मांग न कर रहा हो।
छोटे-छोटे बच्चे बीज बो देते हैं, घड़ी भर बाद जाते हैं उखाड़ कर देखते हैं कि बीज अभी तक अंकुर बना कि नहीं बना। अभी भी बीज का बीज है फिर गाड़ आते हैं, फिर पंद्रह मिनट बाद जाते हैं उखाड़ कर देखते हैं कि अंकुर बना कि नहीं बना। फिर वह बीज अंकुर बनने की क्षमता ही खो देता है इतने बार-बार उखाड़ने से। धैर्य और प्रतीक्षा!
एक वृद्ध भिक्षु एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ है। पुरानी कथा है। और नारद उसके पास से निकले हैं। वह अपनी माला पर हाथ फेर रहा है। और नारद ने उससे पूछा: बड़ी देर से तपश्चर्या कर रहे हो। उसने आंख खोली और कहा: हां, बहुत दिन से कर रहा हूं। मैंने सुना है कि तुम्हारा आवागमन भगवान के घर तक है। वे नारद जो थे पुराने जमाने के जर्नलिस्ट, उस जमाने के पत्रकार, वे सभी जगह जाते थे। और पत्रकारों से तो सभी नेता भी डरते, भगवान भी डरता होगा। उनको कहीं कोई रोक-टोक नहीं होती। तो जाने देते थे भगवान उनको नारद को भीतर-बाहर सब जगह। तो उस बूढ़े संन्यासी ने कहा कि तुम अब की बार भगवान तक जाओ तो जरा पूछ लेना कि मेरी मुक्ति में और कितनी देर है। बहुत हो चुका, कब तक बैठा रहूं यह माला लिए। अन्याय नहीं होना चाहिए। तुम जरा खबर पहुंचा देना। नारद ने कहा: जरूर ही। मैं उनसे पूछ लूंगा कि कितनी देर है। और नारद आगे बढ़े हैं कि दूसरे वृक्ष के नीचे आज ही सुबह संन्यासी हुआ है एक युवा अपना तंबूरा लेकर नाच रहा है। नारद ने मजाक में ही पूछा कि मैं उन संन्यासी का पूछूंगा तुम्हारा भी पूछ लूंगा, क्या इरादे हैं, पूछ लूं भगवान से कि मुक्ति में तुम्हारी कितनी और देर है। लेकिन उस संन्यासी ने सुना भी नहीं वह तो अपना तंबूरा लेकर बजाता रहा और नाचता रहा। नारद चले गए।
फिर वे वापस लौटे। उस बूढ़े संन्यासी के पास जाकर उन्होंने कहा कि मैंने पूछा था, उन्होंने कहा, अभी तीन जन्म और लग जाएंगे। उस संन्यासी ने माला नीचे पटक दी और कहा: हद्द हो गई अन्याय की। मुझसे पीछे आने वाले निकल चुके हैं और अभी तीन जन्म मुझे और लग जाएंगे। जरूर वहां भी कोई रिश्वतखोरी शुरू हो गई मालूम होता है। तीन जन्म और! यह क्या अन्याय है। नारद ने कहा: यह तो मुझे पता नहीं, लेकिन उन्होंने कहा तीन जन्म और लग जाएंगे।
फिर नारद थोड़े डरे कि अब वह दूसरे संन्यासी को कहे कि न कहे। फिर भी कह देना उचित समझा। जब पूछ ही लिया था। उसके पास पहुंचे, वह अभी भी तंबूरा लिए नाच रहा है, गीत गा रहा है। उसे रोका और कहा कि सुन भाई, अगर नाराज न हो। पूछा था मैंने, वे कहने लगे कि वह नया संन्यासी जो आज ही संन्यासी हुआ है। उसको उतने ही जन्म लग जाएंगे जितने उस वृक्ष में पत्ते हैं जिसके नीचे वह नाच रहा है। उस युवा संन्यासी की आंखों में कृतज्ञता के आंसू आ गए। और उसने कहा: इतने से पत्तों में ही मिल जाएगा मोक्ष, इतने ही जन्मों में जितने पत्ते हैं! पृथ्वी पर कितने पत्ते हैं! इस वृक्ष में बहुत थोड़े पत्ते हैं। बड़ी कृपा है उनकी। इतने जल्दी! और वह वापस नाचने लगा। उसने कहा : फिर मिल ही गया। अगर इतने ही पत्तों के संख्या के बराबर जन्म लेने हैं, तो मिल ही गया, देर ही क्या रही फिर। वह नाचने लगा, क्योंकि पृथ्वी पर कितने पत्ते हैं। और कथा यह कहती है कि वह उसी संध्या मुक्त हो गया। क्योंकि जिसकी इतनी प्रतीक्षा है, जिसका इतना अनंत धैर्य है उसके मोक्ष में देरी

कहां रही। प्रतीक्षा ही मुक्ति बन गई। वह उसी संध्या मुक्त हो गया। इस बात को कहते ही मुक्त हो गया।
तो साधक के लिए अंतिम और सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बात जान लेनी जरूरी है, वह है, अनंत प्रतीक्षा, अंतहीन प्रतीक्षा। कितनी ही प्रतीक्षा करने के लिए तैयारी। फिर इसी क्षण भी हो सकता है। फिर हियर एंड नाउ। अभी और यहीं हो सकता है। इसी रात। लेकिन इतनी प्रतीक्षा वाला मन हो तो।
अधैर्य और जल्दी और अभी हो जाए, अभी हो जाए, वह सब फीवर, पागलपन है, बुखार है। वह दौड़ संसार के विक्षिप्त जगत में तो ठीक, लेकिन सत्य के शांत जगत में बिल्कुल भी ठीक नहीं है। ये पांच बातें विदा होते हुए आपसे कहना चाहता हूं। इन्हें मन में किसी जगह सम्हाल कर रख लेना। हो सकता है वे वक्त-वक्त याद आती रहें और उनसे कुछ परिणाम होता रहे। इन तीन दिनों में बहुत सी बातें मैंने आपसे कहीं हैं, बहुत सी वे बातें मौन से भी कहीं हैं जो शब्दों से नहीं कही जा सकती थीं।

मेरी इन सब बातों को इतने प्रेम और शांति से आपने सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं।
क्योंकि कौन सुनने को राजी होता है सत्य की बात को? असत्य की बात को सुनने के लिए तो लोग दूर-दूर की यात्रा करते हैं। सत्य की बात सुनने को कौन राजी होता है? इसीलिए कोई राजी नहीं होता कि सत्य की बात सुननी जीवन को बदलने की शुरुआत हो जाती है। असत्य की बात सुनने पर जीवन को बदलने की कोई जरूरत नहीं होती है। सत्य की बात सुननी एक नई यात्रा की शुरुआत हो जाती है। फिर वैसा ही नहीं रहा जा सकता जैसे हम थे। फिर कुछ बदलना ही पड़ता है। कोई क्रांति लानी ही पड़ती है।

तो आपने तीन दिन तक मेरी बातें सुनीं, उनके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अब हम रात्रि के अंतिम ध्यान के लिए दस मिनट के लिए बैठेंगे और फिर विदा हो जाएंगे। अंतिम रात है इसलिए सब दूर हट जाएं। अपनी-अपनी जगह बना लें और लेट जाएं। बातचीत नहीं करेंगे। जरा सी बातचीत वातावरण को नष्ट करती है। बिल्कुल बात न करें। चुपचाप मौन हट जाएं। बातचीत न करें। जरा भी बात न करें। हट जाएं। हां, थोड़ी जगह बना लें अपने-अपने लिए। ठीक है, मैं मान लूं कि आप जगह बना लिए हैं। बिल्कुल आराम से लेट जाएं। जरा भी कोई बात नहीं करेगा। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें। मैं सुझाव देता हूं, मेरे सुझाव अनुभव करें। शरीर शिथिल हो रहा है। अनुभव करें शरीर शिथिल हो रहा है और शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। श्वास शांत हो रही है, श्वास शांत हो रही है, श्वास शांत हो रही है, श्वास शांत हो रही है, श्वास को भी ढीला छोड़ दें। मन भी मौन हो रहा है, मन मौन हो रहा है, मन मौन हो रहा है, मन मौन हो रहा है। शरीर शिथिल छूट गया, श्वास शांत छूट गई, मन मौन हो गया। अब चुपचाप पड़े हुए रात की आवाजों को सुनते रहें। हवाएं आवाज कर रही हैं, दूर सागर का गर्जन हो रहा है। वृक्ष हिलेंगे, कोई आवाज होगी। सभी आवाजें उसी परमात्मा की हैं। सुनें, उसकी आवाजों को सुनें। मौन सुनते रहें। सुनते ही सुनते मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। दस मिनट के लिए सुनते रहें। सुनें, रात की आवाजों को सुनते रहें। सुनें, रात के सन्नाटे को सुनें। सुनते ही सुनते मन शांत होता जा रहा है। मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है। रात की भांति ही भीतर भी सन्नाटा छा जाएगा। मन शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है। सुनते रहें, सुनते रहें, सुनते रहें। धीरे-धीरे हवाएं रह जाएंगी, रात की आवाजें रह जाएंगी, आप मिट जाएंगे।
मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन बिल्कुल शांत हो गया। हवाएं रह गईं, रात की आवाजें रह गईं, सागर का गर्जन

रह गया, आप मिट गए। मन बिल्कुल शांत हो गया। इस शांति में गहरे से गहरे डूब जाएं। मन शांत हो गया... मन शांत हो गया...
अब धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, फिर बहुत आहिस्ता से आंख खोलें, लेटे ही लेटे आंख खोलें, आकाश में तारे दिखाई पड़ेंगे, सरू के वृक्ष दिखाई पड़ेंगे। बाहर भी उतनी ही शांति प्रतीत होगी जितनी भीतर है। बाहर और भीतर को एक हो जाने दें। जो भीतर है वही बाहर है।
धीरे से आंख खोलें और थोड़ी देर देखते रहें, थोड़ी देर एकटक आकाश की तरफ देखते रहें। फिर धीरे-धीरे अपनी-अपनी जगह उठ कर बैठ जाएं बहुत आहिस्ता से।
कोई आवाज न हो, कोई बात न हो। जिनसे उठते न बनें वे थोड़ी गहरी श्वास लें फिर धीरे-धीरे उठ आएं। बातचीत न हो, धीरे-धीरे उठ आएं।

रात की हमारी अंतिम बैठक समाप्त हुई।